







उत्तरप्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत

# भाँसी की रानी

: महाकाव्य

★

श्यामनारायण प्रसाद

★



हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

वाराणसी-१

मार्च : १९६४

मूल्य

पाँच रुपये मात्र

प्रकाशक | मुद्रक  
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय | राष्ट्रीय प्रेस  
पो० बॉक्स नं० ७०, पिशाचमोचन | सी ७/१२१ बी, सेनपुरा  
वाराणसी-१ | वाराणसी-१

परम पूजा  
रानी छोगी देवी जी विद्वला  
को  
सादर समर्पित

—श्यामनारायण प्रसाद



## परिचय

। महारानी ! समय की गति में जब तेरी यह हुंकार गूँजती रहती थी कि स्वतंत्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, इसके लिए यदि चाणित को सरिता सहरानी होगी तो सहारा दूँगी, मुएँ का पहाड़ बनाना होगा तो बना दूँगी, कब-यों की सीढ़ी बना कर विजयध्वज की शम्बर के मस्तक पर फहराना होगा तो फहरा दूँगी, इतना ही नहीं यदि नखर घरीर की आहुति से ही इस महा यज्ञ की पूर्णाहुति होने वाली होगी तो वह भी सहर्ष स्वीकार है। पत्ता-पत्ता तेरे संदेश को सुना रहा था कि स्वतंत्रता का पुजारी कटार की धार को कोमल पप-धूम समझ कर दुदप धनल की सपटो को फूलों का मधुर-मुहास समझ कर अथाह समर-सिंधु को गो-पद प्रमाण सम मान कर कल्याणमय प्रशस्त पप पर प्राण-सुमनों से अर्चना की चात्ती सजा कर जय-जयकार करता हुआ देवी की आराधना के लिए विहँसता हुआ भागे बढ़ता है। विघ्न-बाघायें खेरी बन कर उसका पद घूमती है। उसके लिए मेदिनी अमरावती है। हाथ वा कृपाण यज्ञ है। पक्षियों के कलरव में तेरा यह उपदेश गूँजता रहता था कि स्वतंत्र वीरान-श्रदेश पराधीन अन्नभेनी प्रासादों से थोछ है। आजादी का नाग लगाने वाले निर्कर वा पीतल पानी पराधीनता के सुगन्धित पदार्थों से वासित जल से सहस्र गुना पेय है। स्वतंत्र-धासों की रोटी परतत्र पट्टरस ध्वजनों से स्वाण्टि है। तेरी विजय-ध्वनि से यह राग गूँजता रहता था कि 'सत्य सकल्प ही विजय का प्रथम जयघोष है। सब मानस गद्गद हो उठता था। अंग-अंग फड़कने लगता था। लेखनी सतवार बन जाना चाहती थी लेकिन वह सौंघवावस्था थी। पात्रों में लड़खड़ाहट थी हाथों में कम्पन था। मानस-पत्र पर असमयता गरजती रहती थी। आज टूटे-फूटे शब्द रूनी सुमनों से कीर्ति मासा पिरोने का प्रयत्न कर रहा है। समा याचना सहर्ष स्वीकार हो।

समाशा ! तेरा वासरूप घरीतो के नाम से विभूषित था त्रिभुमें वीरत्व सौंदर्य की शोमसता के आषत से भ्रंक रहा था। निर्मोहता रोम-रोम में बस



रही थी। नस-नस में धीर रस भर रहा था। बिदूर के बाहर नाना साहब और राव साहब के साथ पतित-पावनी-गंगा के रम्य पुलिन पर तेरी घोड़े की सवारी घूमा रही थी कि भविष्य में तेरा क्या रूप होगा? घुड़दौड़ में नाना साहब का घोड़े पर से गिर जाना और शीघ्र ही घायल साथी को घोड़े पर बग कर एक हाथ से उसको पकड़े हुए और दूसरे से लगाम समासते हुए तीव्र गति से किले को लौट आना तेरे भस्वारोहण की परीक्षा थी। दूसरे दिन सध्या के समय नाना साहब का दूसरे लठकों के साथ हाथी पर बठ कर घूमने के लिए बाहर निकलना और तेरा मधुसूदन-मवलकर हाथी पर चढ़ने के लिए रोना इस पर सान्त्वना देते हुए पिता मोरोपन्थ का कहना कि बेटी! तेरे भाग्य में हाथी नहीं है। इस पर तुम्हारी सत्यपूणा भविष्यवाणी एक बड़ी दस हाथी मेरे भाग्य में है बतला रही थी कि तुममें कितना आत्मबल और सत्य-सकल्य था। उस समय तेरी आयु १२ १३ वर्ष की थी और नाना साहब की १५ १६ वर्ष की।

गंगाधर राव भाँसी के सिंहासन पर आरूढ़ भवश्य थे, लेकिन स्वत्व उनके हाथ से धीरे धीरे क्षिप्तक बसा था। राज्य का कामकाज अंग्रेज रेजिडेण्ट करता था। राजा की आयु पचास वर्ष के करीब हाँ बसी थी, वे सन्तानहीन थे। रानी यौवनावस्था के प्रथम शोषण पर पग रसते ही दुनिया से चल बसी थी इस लिए राजा चिन्तित रहा करते थे। जीवन की आशा मुरझाती जाती थी। तूने उन्हें गले से लगाकर मानस की मुरझाई कतिरिया को फिर से हरा-भरा बना दिया। फिर से नव जीवन आ गया। तुम्हें रनिवास में बैठ कर दासियों के बीच विसासिता में ऊँघना पसन्द न था बलकारों से विभूषित मेंहदी की लाली में वासनामयी सौन्दर्य को सेविका बनना पसन्द न था। तुम्हारी बाल सहेली तलवार थी। माते प्यारे बच्चे थे और अखाड़े का मिट्टी धंगराग थी। तुम्हारे हृदय में अंग्रेज रेजिडेण्ट का शासन खटक रहा था। अंग्रेजों के साथ वह सधि पत्र जिसमें राज्य का पंचम अंश अंग्रेजी फौज के स्वर्ष के लिये बसा गया था बत्तेजे में काँटे की नाँदि चुभ रहा था। उसी मर्मस्पस के काँटों का निवालने के लिये रनिवास में नारी-सेना बना रही थी। दासी सुन्दर, मुन्दर और बासी

माई के साथ तुम्हारा सहेली का सा व्यवहार था। वे क्षतिपूर्ति जो कृम से भी कोमल थीं पत्थर सा कठोर बनने को तैयार हो गईं। जो शरीर नाना प्रकार के आभूषणों से अमचमाता रहता था वह बरछी भाले, तीर और बटारो से दमदमा उठा। जो केश मूर्ति भक्ति के रग-विरगी फूलों से सजे रहते थे अब अन्धाड़े की दक्षिणादिनी मिट्टी में सहजने लगे। जो सखियाँ अपने पति के भक्तित्व प्यार के लिये साम्राजित रहती थीं वे रण निमग्न की राह देखने लगीं। यह तेरे मन्त्रे हृदय के घोर मंत्र का ही प्रभाव था कि मुझे भी हाथ में छलवार उठा लेना चाहते थे। हृद्दिवा से प्रीतिपानि घपकने लगती थी।

मातेश्वरी ! जीवन में सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख अवश्य आती है। यमुषा वसन्त की गुदगुदाहट से हस कर शोष्म की लपटों में चोत्कार कर उठती है। पावस की हरियाली में लहरा कर शीत के अपेक्ष से आक्रान्त हो जाय उठती है। यदि तेरे यौवन के वसन्त में शोष्म की ज्वाला घपक उठी तो चिन्ता का विषय नहीं। चिन्ता का विषय तो था तेरे दुष्प्रभुहे साल का तीन मास की वायु में शीतों से भीमल हो जाना। पर इसमें क्या किसका ? इसी से कहा जाता है कि दैव निन्दुर है पुत्र लोक की असह्य वेदना से माँती के सूर्य भी अस्त हो गये। रह गया अन्ध में दीपक की भक्ति निमित्तमाता बापक रामोदरराव जिसे राजा ने मरने के पहले ही गोद ले लिया था। वही तेरे हृदय के धाव को भरे हुए था लेकिन रात्रु के गोद अस्वीकार करते ही वह पुनः पुरखा हवा लगने की भक्ति हरा हो गया। तू फिर भ्रष्ट कर तपस्विनी की भक्ति काशी की यात्रा करना चाहती थी लेकिन अंधेजों ने इसे अस्वीकार कर लिया। इस पर तेरा भवानी का आकार रूप धरा पर अमक उठा और तू प्रसव के मेघ की भक्ति गरज उठी, "जब तक भारत स्वतंत्र नहीं होगा मैं शास नहीं बटाऊंगी" तेरी यह अमरवाणी अम्बर के अन्त पट में स्वर्णसरो में अंकित हो गई।

विजये ! तू स्वतंत्रता का अन्धका उठाने के पहले कण-कण में धीर-मंत्र फूँकने के पहले, रात में दबी मरणासन्न अग्नि को पुनः हुकार का सहाय देख कर जगाने के पहले यह देखना चाहती थी कि जाति में कितना अन्ध है। अन्ध

में कितना हृदय है और समाज में स्वतन्त्रता, आत्मगौरव और देशोत्थान के लिये घोषित का सागर सहारा कर जीवन को धाजी लगा देने का कितना साहस है। कितना आत्मबल और पुस्तैनी रवानी है। पुत्र दामोदर राव के यज्ञोपवीत द्वारा मूर धनुषों की धाँसों में धूल भोंक कर स्वच्छ जल क तल की भाँति देख सेना तेरी ही बुद्धि की बलिहारो थी।

पूभे ! सुन्दर मुन्दर और काशीबाई मक्षिया के साथ पवन को भी गति की शिक्षा देनेवाले घोड़ों पर सवार होकर काल-सर्पिली सी फुफ्फुकारती ब्रेतवा नगी के विशाल दुर्जेय बसस्थल को घोरती हुई विघ्न बाधाओं के भ्रमस्थल को चलदल की भाँति कँपाती हुई पावस के हरित प्रभात के गाँव पर सोहिवाधारों में सुरमा की कहानी लिखती हुई खिसती के घोर जगल में, जिसमें तिन पर राख की, प्रकाश पर अघकार भी और तुमुल कोलाहल पर नीरवता की विजय पताका फहराती रहती थी, रहनेवाले डाकू सागर सिंह की कमर में हाथ बाँध कर जीते जी पकड़ सेना छुहारी पेशी घौरा को ही सुलभ था। वीर सागर सिंह के स्वार्थपूर्ण क्रूरता से भरे हृदय को देशाभिमानो बना देना प्रधान सेना पति के रूप में अपनी प्राति धर्म की स्वतन्त्रता के लिये मर मिटने का अदम्य उरसाह मर देना तेरे ही बाहुबल और बुद्धिबल का कौशल था।

राजेवरी ! तिली के अन्तिम सम्राट्, स्वतन्त्रता के प्रथम जयघोष सुनाने वाले वृद्ध बहादुरशाह की एसात ऐ हिन्दुस्तान के बाशिन्दो ! अगर हम इरादा कर लें तो बात की बात में दुश्मनों का खारमा कर सकते हैं। हम दुश्मन का नाश कर डालेंगे और अपने देश और अपने धर्म को जो हमें अपनी जान से भी प्यारे हैं क्षतरे से बचा सकते हैं। हिन्दुस्तान के हिन्दुओं और मुसलमानों ! उठो ! माइयो उठो ! खुदा ने जितनी बरकतें इंसान को प्रता की हैं क्या वह जासिध नापाक बिसने घोखा दे-कर ये बरकतें हम लोगों से छीन ली हैं हमेशा के लिये हमें उससे महकूम रख सकेगा ? क्या खुदा की बरकतों के खिलाफ इस तरह का काम हमेशा जारी रख सकता है ? नहीं नहीं फिरगियों ने इतने जुल्म किये हैं कि उनके गुनाहों का प्याला सबरेज हो चुका है। यहाँ तक अब हमारे पाक अजदब को नाश करने की नापाक खाहिश भी उनमें पैदा हो गई है। क्या तुम

धन नो सामोय बैठे रह सकोगे ? खुदा धन यह नहीं चाहता कि तुम सामोय रहो क्योंकि उसने हिन्दू और मुसलमानों के दिमा में अंग्रेजों को अपने मुल्क से बाहर निकालने की स्वाहिय पदा की है और खुदा की फजल और तुम लोगों की बहादुरी के प्रताप से जल्दी ही अंग्रेजों को इतनी फामिल शिकस्त मिलेगी कि हमारे इस मुल्क हिन्दुस्तान में उनका जरा भी निदान न रह जायगा । हमारी इस फौज में छोटे और बड़े की समीज भुना दी जायगी और सब के साथ बराबरों का बरताव किया जायगा क्योंकि इस पाक जग में अपने धन की रक्षा के लिये त्रिठने लोग उसवार खींचेंगे वे सब एक समान यश के भागी होंगे । वे सब भाई-भाई हैं उसमें छोटे-बड़े का कोई नेद नहीं इसलिये मैं फिर अपने तमाम हिन्दू भाइयों से कहता हूँ उठो और ईश्वर के बरामे हुए इस परम कत्तब्य को पूरा करने के लिये मैदाने जंग में कूद पड़ो । तमाम हिन्दुओं और मुसलमानों के नाम हम महज अपना धर्म समझ कर जनता के साथ शामिल हुए हैं । इस मौके पर जो कोई जायरता दिखायेगा या भोलेपन के कारण दगाबाज फिरंगियों के बादों पर एतबार करेगा वह धीम्र ही घरमिला होगा और इंगलिस्तान के साथ अपनी बफागरी का उसे वैसा ही इनाम मिलेगा जैसा अरब के मवाद को मिला । इसके अलावा इस बात की भी याद रखें कि इस जंग में तमाम हिन्दू और मुसलमान मिल कर काम करें और किसी प्रतिष्ठित नेता की हिदायतों पर चल कर इस तरह का व्यवहार करें जिससे अमनो-आमान जायम रहे और गरीब लोग सन्तुष्ट रहें तथा उनका अपना हतवा और उनकी छात बढ़े । जहाँ तक मुमकिन हो सकता है सबको चाहिये कि इस एलान की नबल बरके किसी आम जगह पर लगा दें । वेर रोम-रोम में महत्वाकांशा जाग रही थी । बीबीगढ़ में धमुघर की छाती पर गोरो मेमों और बर्बों के खून के पड़े खन्वे की जबरदस्ती ब्राह्मणों का जीम से बटवाना और बटवा कर छाक बर कर पानी के तस्त पर नुना देना वेरे हृदय में धर्म की रसा के लिये घातकालियों के प्राणों की होता जता देने का दुःख्य आघात जगा रहा था ।

अबजाता आज भी धून्य में रणभेरी बजा-बजा कर मन पूँक रहा है

घोर वेदना से पागलों का भाँति कह रहा है कि क्रूर भाववायी कूपर ने सह सीली इमारत के सौ गज के गुम्बज में छाद्यट निर्दोष भयहाय हिन्दू और मुसल मान स्त्री-वर्णों को बन्द किया था। जेठ की ज्वालामयी रात थी। वे बिना पाती और हवा के तटप-तटप कर चल बसे। ओ रोप बचे उनको जाति-द्रोही धर्म-नाशक दूसरों के अश्रु पर पलनेवाले कुत्ते ने गोली का निशान बना डाला। मेदिनी काँप उठी गगन हाहाकार कर उठा। इतना ही नहीं भयमरे लोगों को एक छोटे से सँकरे कुएँ में डाल कर ऊपर से मिट्टी से बिल्कुल ढक दिया। इन सब घटनाओं के सुनते ही तेरी प्रोधाग्नि भ्रतन्त को धूम लेना चाहती थी। भद्रम्य उत्साह भरा रोम रोम का कम्पन दिग्न्त को कँपा देना चाहता था। यक भ्रुकुटि प्रलय मचा देना चाहती थी। तेरी काल सर्पिणी से फुफकारती तसवार भवानी की जीम से सपनपाती अरि-दल के हृदय-सिन्धु में सहस्रते घोषित को जेठ की तपती मरीचिका की भाँति पान कर जाना चाहती थी। तू समय के सूत्र में अनुभवों की माला पिरो रही थी। दुःख की जगित तसवारों को रवानी के पाना से धोकर सत्य संवल्पमय हुंकारों के ताप से तप्त कर रही थी। देख रही थी उस बेला को जब एक एक बूँद खून के ऊपर भारत के सहस्र सपूतों के कल-कण्ठों से विजय ध्वनि दिशाया का बधिर बनाकर अरि-उर-जनद-पटल को काली के पत्ते के समान कर-कर फाटती हुई भ्रतन्त में विलीन हो जायगी। तू धमर-सिन्धु को पीने के लिये भ्रगस्त्य से वरदान माँग रही थी। विघ्नो के तम-ताम को निगल जाने के लिए भगवान् भशुमाली से प्रकाश माँग रहे थी। जाति की रक्षा के लिये सम्राट् से धनु के सोने में कटार भोक देने के लिये माता के धौवन में सोई कर्णवती को जगा रही थी। वीरों की धमर कहानी सुनने के लिये विस्ववन्द्य राजमाता जीजाबाई को विषय कर रही थी। भ्रंभ्रवात के विकट गजन में रूप कुसुम के मधुर मुसकान को चिर नवीन बनी रहने के लिये देवस देवी की धाराधना कर रही थी।

सर्वमंगले ! दीवाने-शास के धरों के दूसरी घोर रणध्वनी का रूप हमदमा रहा था। सामने कुर्सी पर बालक दामोदरराव आश्रय में डूबा हुआ बैठा था। भगम में मंत्री गण और दरबारी विराभ्रमान थे। दायाँ घोर पिता मोरोपन्ड

भासकर्म और कौतूहलपूर्ण नेत्रों से भासकर्म की ओर देख रहे थे। भासकर्म ने जेब से कागज़ निकाला और रानी के प्रतिकूल इतहीजी का घोषणा-पत्र पढ़ सुनाया जिसको सुनते ही पिता पन्थ व मुँह से निकला 'भयर्ष हुमा' दरबारियों ने कहा 'भयर्षोनी बात है। बालक दामोदरराय भी समझने का प्रयत्न किया लेकिन बालपन की चालता के कारण समझ न सका कौतूहलपूर्ण भाँसें ऊपर देखती रह गईं। परदा हिला, पीछे से बिजली सी कड़क हुई। 'मैं अपनी भाँसी नहीं हूँगी' मेदिनी दरदर उठी, भासकर्म की छाती घट्टक उठी। वायुमण्डल ने अपने भयंकर के घाव को उस चमकीली मसहम से भ्रष्टा किया। भारतखण्ड के इतिहास के पृष्ठ पर स्वर्णक्षरों में अंकित हो गया। नगाधिराज के मस्तर पर के अमरमते मुकुट में मुक्ता की माला बन कर अमर उठा। मय के मारे भासकर्म की पेशानी से पानी टपकने लगा। काँपता हुमा तीन डग में ही दीवाने खास से बाहर चला गया। इससे बाद वीर सपूतों के मानस में तेरा-वीर मंत्र गूजने लगा कि आज फिर से जाग उठने का समय है। यदि स्वतंत्रता देवी की आराधना के लिए एक श्व भी भूमि न मिले तो वायु में ज्वाला बन कर महदानी है, जलद में बिजली बन कर पुछकाना है और भयल सम धनु के ऊपर बन्न बनकर महदानी है। अब कुवते बाजू से माता की सिखरी सड़ियों को पुनः प्रेम-सूत्र में पिरो कर अर्चना के लिये महदानी-आर्षों की माला पिरोनी है। सग्गा की धुरभयवी हुई फुनवारो को फिर से हृदय रक्त न सोंव कर हरा मरा बनाना है। इस वीर मंत्र को पवन गुनगुनाता हुमा चारों ओर विचरने लगा। उद-उद की आसामों पर पलियों ने मयोगान गाया। दिशाएँ मुसकरा उठी।

धर्म-यजिने! जिस समय तू शांती व वीर सपूता में मंत्र फूँक रही थी उसी समय नरवे खाँ का सन्देश मिला कि भाँसी पहने मोरछा का घस रड़ा है वह अनुचित रीति से आरक्षा से हटकर लिया गया है अब उसे वापस कर देना चाहिये। यह संदेश सारे नगर में बिजली की भाँति फैल गया। इसी ने साथ ही साथ यह भी खबर फैल गई कि यह भीस हजार सेना सेवर भाँसी पर हमला भी करने का रहा है। भाँसी के सभी बर्माघाए घबड़ा गये, क्योंकि सेना पूर्णरूप

से तैयार न हो पाई थी। यह सन्देश मातेश्वरी ! तेरे कानों में पडा मानस कमल की भाँति विहँस उठा राम रोम फड़क उठा म्यान में तलवार तमतमा उठी। गुरु भोपटकर का यह वान्य कि युद्ध प्रारम्भ करने के पहले अपने झण्डे के साथ-साथ यूनियन जेक रखता जाय' इस पर तेरा यह अदम्य उत्साह कि मेरा रोधमा झण्डा सबसे ऊमरी बुर्ज पर रहेगा। यूनियन जेक नीचे की किसी भी बुर्ज पर रख दिया जा सकता है—बता रहा था कि कितना बड़ा स्वदेशामिमान हृदय में भरा है। विष्णो का पहाड़ छुटकी बजाकर उड़ा देने का निन्तना पौषप विशाल बाहुओं में भरा है। जाति अमिमान का कितना बड़ा ताज सिर पर चमकता रहा है अयाह सागर की भाँति कितनी अनिवचनीय धीरता हृदय में विहँस रही थी। अनन्त अतुर्दशी का दिन था मातेश्वरी ! तेरा दिन भर का उपवास था। अभी दो चार घण्टे ही फलाहार कर पाई थी कि इसी बीच खबर मिली कि नत्येःखी का मोला टकतास के पीछे एक सेठ के मकान में निरा है। फलाहार वाली में ही पड़ा रह गया। तू वीर वेप में तुरन्त घोड़े पर सवार होकर अपनी तीनों सखियों को साथ ले छोड़कर फाटक पर जा पहुँची। गुलाम गोस खी में भत्र फूँकने लगी, "घनु इसी घोर है गोसों की वर्षा लगातार करना। इसी भाँति सखियों के साथ हवा में उड़-उड़ कर सप्ती-फाटकी के गोसग्दाजा को सावधान करने लगी। नत्ये खी की सेना की टोपों की दूधरी-बाड दगने भी न पाई और किले के टोपों की श्रेष्थान्नि गमन घूमने के लिये बड़ पत्ती। अरि-सेना फतिगों की भाँति जल-अस कर राख होने लगी। अन्तरिक्ष चीलार कर उठा। पवन धर-धर काँपने लगा, मेदिनी बगमगा उठी। तू नाम-सपिण्ठी की जिह्वा की भाँति सपसपाती तसवार हाथ में ले सखियों के साथ घनु-सेना पर उत्कापात सहय दूट पडी। बाठ की बाठ में सारों के डेर एकत्र हो गए घोषित की सरिता घस्य श्यामला के अचस को रंजित करने लगी। नत्ये खी को होश आया मे किससे सड़ रहा है ? यह तो साकार भवानी है और जान लेकर मैदान से भाग खड़ा हुमा। धम्बर के मस्तक पर भाँसी की विजय पताका फहराने लगी।

तेरी इस विजय से घनु के कान सड़े हो गये। तेरा अदम्य उत्साह, अजेय पौषप अतुलनीय निर्भीकता और वीरता धर्मियों के हृदय में दीस पैदा करने

लगी। तेरे इस संग्राम को देख अंग्रेज समझ गये कि रानी भक्तेले ही स्वतंत्रता संग्राम का यत्र संचालन कर सकती है। तेरा अपनी छत्तिपों को छाप ले नये लों का बीस हजार सेना के ऊपर दूट पड़ने का चाहस और दुर्जेय भारत बल राधु को हृदय में सका उत्पन्न कर दिया कि किसी समय रानी हमलाओं के सीने में भी कटार भाक सकती है। ताज को परों से रौन सकती है, मूनिमन जक को पर के नीचे कुचल कर अम्बर के मस्तक पर गेहमा भग्ना फहरा सकती है। किसी न किसी बहाने से अंग्रेज तेरे इस उत्साहपूर्ण शौर्य की भावमाना चाहते थे। मरानी ! तुम्हारे अंग्रेजों की यह कूटनीति छिपी न रह सकी। यता स्वच्छ जल के तप्त की कीचड़ छिपी रह सकती है वह कौन सी भावति है जो दर्पण के सामने अपने को अमल रम सके। दूसरे दिन दीवाने छास में माता के वीर सपुत्र जवाहर सिंह और रघुनाथ सिंह बुनाये गये। राजेश्वरी ! तू अपने स्वतंत्रता-संग्राम के कार्य को और तेज करना चाहती थी। दोनों वीर सपुत्रों को भाग्य किसी छोरों ऐसी ढाली जाय जो न तो पीछे धक्का दें और न अन्दो गरम ही हों। विनीत माद में उत्तर मिला, श्रीमतीजी बन्दीजी की निपुणता से ऐसी ही छोरों ढाली जा रही है। पुन अपने दुष्पा और बाब्द ? उत्तर मिला, 'तीन महीने के युद्ध के लिये सैपार है। छाप किसी बात की चिन्ता न करें। सभी सामान पूर्व रूप से सैपार हो रहा है और सैपार भी है।' रानी ! तेरे मुख-अङ्कत पर अन्तोप की रेखा चमक उठी, पवन में यह ध्वनि सहजाने लगी कि वे भी अपनी छत्तिपों और अन्य अंग्रेजी की नारियों को अन्य-संचालन और गोलन्दाजो की शिक्षा दे रही हैं। इसी बीच अंग्रेजों का दूत पत्र लेकर पहुँचा उसमें लिखा था "रानी ! छापद छिपे-छिपे विप्लवकारियों का छाप दे रही है। यह विस्वातपात है। वे निरस्त मेरे यहाँ खली भावें इसी में उनकी मसार्ई है"। पत्र पढ़ते ही मरानी ! तेरा हून लौस उठा, बेहूण तपतमा लार, राधु को उचर मिला, "भारतीय नारी सभी भी किसी पर पुरख का विस्वात नहार्ई करती और न तो निरस्त किसी से मिलती ही है। यदि भाग्य हो तो मैं श्रीमान की सेवा में अपने अंगरलका के छाप उपस्थित हूँ। इतना कह कर पुन बुजों पर भाकर छोरों रखवाने



लगी। २० मार्च को सवेरे भाँसी के पूर्व-दक्षिण कामासिन देवी की टौरियों के पोछे लगभग तान मौल के अन्तर पर असंख्य तम्बू तनने लगे। घाट में असंख्य लोपे छिपाई खाने लगी। राजरानी! तेरी दूरबीन के सम्मुख छिपा न रह सका। सारी भाँसी नगरी में कोनाहल मच गया। भवसर पाकर नगर की तिकराल लोपे गरज उठीं। तू भी अपनी प्राण प्यारी सखियों के साथ धोड़े पर सगर होकर घुट्ट संचालन करने लगी। बात की बात से भाँसी के बाहर ककड़ों के डेर टोले बनाने लगे। धारे गगन में घुँघ्रा हो घुँघ्रा हो गया। तिन में प्रमादस्या की कालिमा छा गई। चन्द्रवाक अपनी प्रियतमा से अलग हाने लगा पक्षीगण अपने-अपने नोड़ों को सौटने लगे शृगाल तारस्वर में निशाचरों का जय जयकार करने लगे। पिशाचिनी हाथ में खयर ले लेकर भट्टहास करती हुई बिचरने लगी 'पुन' भाग्य का सूर्य चमकने लगा। भारत की निराशा का अन्धकार सापता हो गया। विजय-मठाका अन्त के अस्तक पर फहरा उठी। अनु जनरल का आशा पर पानी फिर गया। अपनी उँगलियों पर गिनते योग्य सेना लेकर शिविर को लौट आया।

क्या तू नहीं जानती थी कि स्वयंभवा सग्राम के प्रथम सेनानी बीर केशरी शिवाजी को भीरगजेव की कैद में डलवाने वाला अपना ही वंशज कृतघ्नी था। रण-भुगव सिखोनिया हुल-भूयण महापणा प्रताप को जंगल को छाक छनवाने वाला सगा सहोदर शक्ति सिंह ही था। चन्देल वंश-अवतंस पृथ्वीराज की भाँखें निकलवाने वाला स्वयं फुफेरा भाई जयचन्द्र था। भेराड़ केशरी रत्नसिंह को कैद करा कर त्रलोक्य सुन्दरी लज्जा की साकार प्रतिमा पातिव्रत की मूर्ति रानी पद्मिनी को जोहर के हुताशन के आसन पर बठा देने वाला अपना ही मंत्री राघव चेतन था। माते-बरी! डूंस हो गई थी न समझ लगी कि स्वच्छ जल के भीचे भी कीचड़ होतो है, विश्वास कर बैठो नमक हराम तुर्क पीरमसी भीर जाति के वनक दूहाजू का जो अपने-अपने से मिले हुए थे। छिपे-छिपे किले का सारा भेरा रहे थे। इतना ही नहीं जाति-द्रोही दूहाजू ने वो हाथ में गंगाजल लेकर मोडछा पाटक खोलने की कसम भी खा ली थी केवल वो गाँव की जागोर मिलने की सालक से।

पुन दूसरे दिन पी फटी । भगवान् भगुमामी का समतमाया चेहरा दिखाई पड़ा । आज की शोभापि विचित्र थी । पता नहीं, धायद रात्रि के उन देवदोहियों भार कृष्णियों से शत्रु के मिलने और मोठछा फाटक खोलने की धाप की बुन कर । रात्री शत्रु के गालों से नष्ट हुए किले की मरम्मत करवा रही थी । बुर्जों पर सीपे और गोले रक्ते जाने लगे । रण का विगुल बजा, हमामे गरजने लगे । गोला का जवाब गोले देने लगे । निगन्त परथरा उठा, मेदिनी बौपने लगी, दानों और क सेनानी अपना अपना रण-बीजल लिखलाने लगे । धाम हो चनी लेकिन किसी को विजय-वताका आकाश में न उठी । अयेजों क जान माल की बहुत बड़ी क्षति हुई । निगा मरे हुए वीर सपूता क ऊपर भ्रामू क कण विखरती हुई यने भाँ सिरानियों को धौवस स डव कर मुलाने क लिये आकाश से उतर पड़ी, लेकिन उन रण मतवालों को आराम कहाँ ? उनको तो आराम मिल रहा था शत्रु क बवसा की सीड़ी बना कर स्वर्ग चरने में और फिर सिर का गेंद खेनने में । उस रात्रि में ससी मुग्गर का दूहाजू को बुकुम सीपी गई । गोलगात्रा में वह दूहाजू की हो चिप्या था । सध्या के बाद मुन्दर औरछा पान्क पर आ बटी । दूहाजू आराम करते चला गया । दूसरे दिन फिर काम पर आ गया । अयेजी सेना फाटक के सामने बटी हुई थी । सध्या ही चली थी मुग्गर अपने स्थान पर आ पहुँची जिसको दूहाजू ने नहीं देखा । गाछ सेना ने पीछे से साम भडा दिखाया । दूहाजू नीचे उतर कर लाहे का एर बड़ी सलाख लेकर फाटक के ठाले ठाड डाले, इस बात का मुन्दर ने देख लिया, सडकार लेकर गरजती हुई उगक सामन पहुँची । सामने डन्बर खड़ी हो गई और पिचकारने लगी, "नीब ! जादिगेही क्या रात्री के विदरास का जवाब दे रहा है तुम्हे क्या मिलेगा इतना बडा धनयं क करने म ? इस पर नी बह न माना । मुग्गर ने उससे ऊपर तलवार का धार बिपा । उसको उस बूतफनी ने लाहे की सलाख पर राक बिपा । तलवार दूब-दूब हा गई । उस नीब ने उग योरांगना के गीने में सलाख का छोटा पाछ निगाता धजूर था । इसी बीच अयेजी सग भी फाटक गुजने से गरजती हुई किले के भीतर मुली । एर

सिपाही की गोसी माहित सुन्दर को मगी । वह उसी स्थान पर रानी का जयजय कार करती हुई डेर हा गई । दुश्मन की सेना गरजती हुई किले में घुस गई । देखते ही देखते मुहल्लों की होली जल उठी ।

तू अच्छी तरह जानती थी कि जला हुआ अस्तबल फिर से बनवाया जा सकता है । महल के भग्नावशेष को बनाने वाले फिर से पदा हो सकते हैं । उमड़े हुये मुहल्ले फिर से बसाये जा सकते हैं लेकिन विशाल पुस्तकालय जिसमें वेद पुराण इतिहास काय और अरबी-फारसी की हस्तलिखित प्रतिषी जिसरी नकल करने के लिये अन्य देशों से विद्वान् भाते थे भ्रम कहीं मिलेंगी ? इन जले हुये ग्रंथों के रचयिता कहीं मिलेंगे ? यह सोचकर तू पागल हो उठी । तुम्हे पति और पुत्र का मरना भी कम-सेन स विचलित न कर सका । प्राण प्यारे किने का जलना भा न टिगा सका । जो मानस विघ्न-बाधाओं में कमल की भाँति खिल उठता था वही पवन से ताड़ित कल्लो के पक्षे के समान हो गया और तू नागान दुषमुँहें बच्चे की तरह विलस विलस कर रोने लगी । धर्म तेरा प्राण था और धर्म-ग्रन्थ जीवन । धर्म-ग्रन्थों का भस्म होते देख तू भी स्वयं वारुद में घाग क्षमा कर भस्म हो जाना चाहती थी लेकिन धर्म गुरु भोपटकर के मंत्र स तुम्हारी प्रज्ञा का कपाट खुला ।

तुम्हे धर्मगुरु क बताये हुये गुप्त मार्ग से निकल कर प्राण बचा लेना पसन्द न था बापरो की भाँति छिप कर लक्ष्य तक पहुँचना पसन्द न था । तू बीरोचित मार्ग जानती थी उस पर चल भी चुकी थी, इसलिये अर्धरात्रि में गगनचुम्बी अग्नि की लपटा का चोरती हुई सदर फाटक से निकल कर दुश्मन की छाती पर पेर रखती हुई कालपा की घोर चल पड़ी । पीठ पर बालक दामोदरराज बसा हुआ था । सिर पर पूर्वजा का पावन ठाग चमचमा रहा था हाव में धर्मगुरु की दा हुई धर्म-रक्षा की पत्रवार बाल-सायिनी तलवार लपलपा रही थी । पवन को भा गति श्री शिवा देने वाला बचल भन्व अम्बर में उड़ा बसा जा रहा था ।

सुमवसर का परस्र और जीवन की सार्वजन्ता समभने वाली धम रक्षा और मातृशर्रा की प्राण रक्षा के लिये प्राण ी उमड़नी जवानी का भस्म करने भोपधि

बनाने वाली तपस्विनी थी, झरवारी कीरिन घाघी उत में रानी के सदर पाटक से निकल जाने के बाद लक्ष्मीबाई के समान वेस में बसे ही घोड़े पर सवार होकर पाटक के बीच घनु से भा जूमी। अंग्रेज उसको ही रानी समझकर उस पर दूध पड़े धकेली झरवारी की तलवार घनु के सहसा करवाला में रुक सक समकती, अन्त में अन्तर्हित हो गई।

तू भगम्य पहाड़ों की चोटियों का लीमती हुई, धार जंगला की निविडना का पीरती हुई बाली की धोर बढ़ी जा रही था। घोडा व टापा क भापाता से शिला-स्रएटा की चिनगारी रूपी अिद्धा बाहर निरल पडता था। कवल जुगुनू का लघुप्रकाश ही अघवार का हृदय वेपता हुआ पय प्रदर्शक का काम कर रहा था। जगली अन्तु अघनी अघनी माँओं को छोड अन्वों के साथ भाग नागकर अघवार की धरण ले रहे थे। पशोणण भय स भाजान्त ही पर कठफड़त हुये अघवार में उड़ते जा रहे थे। इसी बीच अघे रास्ते में दुग् वीकर सेना लेकर सावन की उमड़ती सटिनी में लघु शिलास्रएट वनकर, अमभवात के प्रवल अकारे के सम्मुख अडना चाहा लेकिन तरी उमड़ती धोर-बाहिनी के सम्मुख घोणित की धारा में बह गया। पी फनी, आकाश बाली बादर फेंक कर मुसन्नराने लगा। बीरा, तू रात भर में सी मील का मार्ग तय करके बालपो पहुँच गई।

बालपो यमुना के किनारे एक धोर दड बिला, तीन धोर परकाटा धोर बोधी धोर यमुना नदी से पिरा हुआ खासा सुरणित नगर था। जब तू वहाँ पहुँची तब राब साहब, नाना साहब का भाई और छाया लोपे वहाँ मौजूद थे। दूधरे लिन तूने इन लोगों से अँट की। लोगों ने तुम्हारा लिल छोल कर सत्वार किता। तू सत्वार की भूखी न था। तरी धालों के सामने अदनी-अमभूमि पराधीनता में अकधी हुई बिलस रही थी। काना में अन्त अन्तरिस में रमती दूध अर्गावती हाहा राना देवन देवी ताराबाई प्रमृति अत्राणियों की अमर धारमावे शिपा दे रही थी कि घनु के लोने में अगार मौक दो समराप्ति की तरनपाठी विभीषिका का अद पर्व की पायूववपिणी अन्त्रिसा अमन अपाण की धार का अमल पय-भून अमभार अन्तर्प के पहाड की होती जगा ले। तू

एक ही दृष्टि में कालपा के गुप्त से गुप्त रहस्य को समझ गई और यह भी जान गई कि राव साहब के सिपाहियों की रक्त-त्रता पथ में रोड़े बनेंगी, हुमा भी वही। दावान खास में सबों ने राव साहब को ही कालपी के रण का सेनानायक चुना। उही समय तू समझ गई कि विजय किसका होगी और पराजय किसकी? रण का बिगुल बजा दोना और से शख प्रहार होने लगा। प्रथम शत्रु का पर उखड़ता हुमा निश्चिन्ता दिया लेकिन कुशल नायक न होने के कारण विजय का पन्ना उखट गया। फिर भी तेरे धर्म्य उस्ताह और घोड़े ने पथन में उड़-उड़ कर टापा से शत्रुमा के मस्तक को विनीर्ण कर बैरी के मानस का चलदस की भाँति चलायमान कर दिया लेकिन राव साहब के नायकत्व में सेना ने इतनी भाँग छान ली थी कि वही होने चना जा दब को मंजूर था। फिर भा तू यह नहीं देखना चाहती थी कि पूर्वजों का पावन गेहमा भटा शत्रुमा क पर के नीचे रौंग जाय। दोना हाथों में काल सपिणी-सी लपलपाती तलवार लेकर शत्रु के सिर छोटने लगा और दाँत से घोड़े का लगाम पकड़ कर सधासन करने लगी। शण में ही भायों का पहाड बन गया शोणित की सरिता वह चली, पवन भी चाहत हो शोस्कार उठा अनन्त में भायों का मेला लग गया लेकिन तेरी यह कुर्वानी विघाता को अभी मंजूर न हुई।

सध्या सुन्दरी ने कौतूहलपूर्ण रक्षित नेत्रों से देश के सिरदानिया को चिर निद्रा में निमग्न देखा। भाँसू की धारा ध्यामल अंचल पर बह चली। नेत्र के अचल के घुलने से वह और भी गाढ़ा हो चला। तू भी सध्या देवी की धारा धना के लिये माड़ी देर ध्यानमग्न हुई। फिर चिचिर में प्रवेश किया। इसी बीच गुल मुहम्मद रघुनाथ सिंह और दशमुख भी भा पहुँचे। उस समय तेर पास साल कुर्ती वाले केवल दो सौ सवार रह गये थे। तुझे निराश होकर इन बचे हुए सिरदानियों को साथ ले घोर अघवार में विष्णो की छाती पर लगाम मोड़नी पड़ी। भाँसों के सम्मुख भव बवल स्वासियर का ही किला निश्चिन्ता दे रहा था और मानस में सुरक्षित रण का बनाने का नवथा।

स्वासियर का उपा ने पू पूट खोला। सामने सावार भवानी का दसक गद्गदा हो उठी। भाँग का मुहाम और भी दनीप्यमान हो गया। प्राची ने

विहँसकर स्वाणमय फाटक खोला। भगवान् शत्रुमाली तरे दर्शन के लिये प्रेम नीर में डबडबाया भीलों से भागे बढ़े। उनका प्रबल शत्रु, प्रन्धकार क्षण में सापता हो गया यह तरे ही पौरुष का प्रताप था। वीर सेनानियों के साथ लू थोड़े पर से उतर पड़ी। सिर पर आकाश महत्वाकांक्षायें लिये विहँस रहा था।

दूसरे दिन पो फटी। पक्षीगण वृक्षों की छायाओं से मँरवी सुनकर पृथ्वी पर उतरकर दाना चुँगने लगे। तू भी सखी मुन्दर को साम से ज्वालिपर के निरीक्षण के लिये भागे बड़ी। किले से थोड़ी दूर उत्तर-पूर्व मुरार की धार प्रकृति की गोम में मस्त गाता हुआ सोनरेछा नाता यह रहा था। वृक्षों की सवगा लतायें अपनी कोमल बाहों फैलाकर स्वच्छ चंचल जल के ऊपर आलिंगन का आद्रु पठ रही थीं। चबल बात्रि एक ही धारांग में नाले की पार कर उस प्रकृति के हृदय में पहुँच गया जहाँ दूर्वा का मदान मस्त सहरा रहा था उसी की गोम में प्रजा का बपाट छाने हुये छोटी-सा कुटिया विहँस रही थी। सम्मुख बाएँ मृगच्छले के ऊपर प्राचीन ऋषियों के प्रतीक भावा गगादास ध्यान-भ्रम थे। बगल में जल से भरा हुआ कमलकु सहरा रहा था। दूसरे पादर्व में पलास-दंड रक्षता हुआ था। उस विद्याल ललाट से अपूर्व तेज सूर्य की किरणों की भी हृत्प्रभ कर रहा था। कुटिया की बगल में कदम्ब के वृक्ष से धाड़े बाँध दिये गये जिनकी टापा की ध्वनि घोर हिनहिनाहट से तपस्वी की समाधि खुली, रुक्मि नेत्र ऊपर उठे। सामने साकार भवान् की देव एक अनिश्चनीय धानन्द हृदय में सहगने लगा। तू अपनी प्राण प्यारी सखी के साथ छीठस जल से प्यास बुझ कर तपस्वी के द्वारा लिये हुये आसन पर बैठ गई। बाबा श्री भी आतिथ्य सत्कार से निवृत्त हो आसन पर विराजमान हो गये। तूने प्रश्न किया—

‘स्वराज्य कैसे मिलेगा भगवन् ?’

‘जैसे मित्रता भाया है।’

‘तहीं नमभ सखी प्रभो।’ सुने भीतूहनपूर्ण नेत्र से पुन भाशा माँगी।

‘स्वाग तपस्व्या भीर बलिदान से।’

एक क्षीण मूमहाराह के साथ तूने पुन प्रश्न किया—

‘क्या हम लोग अपनी भीलों से पैस सँगे ?’

प्रश्न सुनते ही तपस्वी की मुग्ध और गम्भीर हो गई। पुन सन्नद होकर कहने लगे—“भवानी ! यह मोड़ क्या ? कभी इमारत की नींव की ईंट उसके साकार रूप की देगनी है। इसी नींव से तरे लिये भी यह भसम्भर है कि स्वातन्त्र्य भवन के सारार रूप की देव सखी। तुम्हें ही स्वातन्त्र्य भवन की नींव की पहली ईंट

चननी है जिसके ऊपर सत्य संकल्प त्याग और बलिदान से जानेवाले धीरे भव्य भवन का निर्माण करेंगे और उसकी छत्रछाया में देशोत्थान के गीत गावेंगे। इस उपदेश के सुनते ही रणचण्डी ! तेरी प्रज्ञा का कपाट खुल गया जिसमें आत्म बलिदान की पावन प्रतिमा विहस उठी और उधर प्राची के भ्रांक्षस पर गोधूलि भी मुखवरा उठी। साष्टांग दण्डवत् के बाद मुख के निक्सा—“मैं पुनः दशन करूँगी प्रभो ! इतना कहकर सखी मुँदर के साथ घाड़े पर सवार हो किले को लौट आई।

आकाश में विपत्ति के घाँसल मँडरा रहे थे। विभीषिका अपनी कालसर्पिणी सी जौम लपलपा रही थी लेकिन ग्यामियर वाली को इसकी परवाह न थी। राव साहब पेशवा के ऐश भाराम की नाटकशाला भव भी दिवाली मना रहों थी। भाँग पर भाँग छन रही थी। उधर जनरल रोज की सेना की तैयारी प्रबल वेग से हो रही थी। काल के समान विकराल मुह बाये शतघ्नी किले की ओर देख रही थी ? तेरी भ्राँखों में नौद न थी। हूँ व में सन्तोष और भाराम न था। तू जीते जी अपने हाथ के पासों को पकटते न देख सकती थी और यह भी न देख सकती थी कि पूबओका पावन गेहमा भएडा दुदमन के परों के नीचे कुषला जाय। तूने अपनी प्यारी सखी मुदर से कहा यह मेरा अन्तिम सपना है। बाबा गंगादास की बात याद है न ? मुँदर ने स्वीकार किया। १७ जून को त्रिगेडिपर स्मिथ ने रण का विगुल बजाया। भाँसी के किले की छोरों ने भी जयघोष किया। दोना ओर से युद्ध प्रारम्भ हो गया। गोले का जवाब गोले देने लगे। बात की बात में आकाश में धूल और धुएँ छा गये। प्राणों का मेला लग गया। तू भी गोलन्दार्जों को सावधान करती हुई चंचल बाज्रि पर सवार हो सखी मुँदर को साथ ले प्राणा की बाजी लगा रही थी। लोहों की रण्ड से बिनगारियाँ छिन्नक रही थी। घोंटा के रेल-मेल और छोरों की क्रोधान्नि से उस दिन अग्नेजों की पराजय हुई और सेनिका को साथ ले त्रिबिर को लौट आया। सन्ध्या नीरवता के कन्धे का भवलम्बन लेती हुई पृथ्वी पर उतरने लगी।

सुभे रात मर नीर न आई। अपने पार्था सरदारों के साथ रण का नक्शा बनाती रह गई। उधर अम्बर की मन्त्रणा समाप्त हुई और इधर तेरी। सरदारों ने क्षा-भीरर पीठ पर पानी का घेला बाँधा। तू केवल एक गिलास द्रव्य ही पी पाई थी कि इसी बीच पुन रण के बाजे बज उठे। रघुनाथ सिंह ने मुदर का सचेत किया कि आज राती का अन्तिम युद्ध है इसलिये एक मिनट

के लिये भी साथ न छोड़ना । मुंदर ने स्वीकार लिया । तूने रामचन्द्र देशमुख को समझाया कि आज मेरा यह अन्तिम मन्त्राम है इसलिये बालक शमांतराव को अपनी पीठ पर बाँधो, भगर मैं मारी जाऊँ तो इसको सुरक्षित दक्षिण भारत में पहुँचा देना । कुँवर रघुनाथ सिंह ! एक बात धीर कहना है कि विषमर्मी भरे शरीर को छूने न पावे । इसा बीच मुंदर अस्तबल से घोडा लेकर भा पहुँची । घोड़े को देखते ही तूने बता लिया कि यह अड़ियल है । मुँर हृत्प्रम सी खड़ी रह गई । दूसरा घोडा लाने का भ्रम समय भी न था इसलिये रानी ने उसे ही अपने अन्तिम संग्राम का साथी बनाया । इसी बीच दुश्मन के गोले गरजने लगे धीर कृष्ण न कह सकी । नये घोड़े पर सवार होकर युद्ध की धोर चल दी । रास्ते में घोडा अड़ा लेकिन पुचकारने मे पुन भागे बदा धीर शत्रु के सम्मुख जा पहुँचा । रात भर में शत्रु ने काफी तैयारी कर ली थी । तू भूखा सिंहनी की भाँति शत्रु-सेना पर दूट पड़ी । घात की घात में मुँर का पहाड बन गया । भगनी ! लाल कुर्ती वाले सवार जो-जान से तेरी रक्षा में सतग्न थे धीर शत्रुओं की सख्या कम कर रहे थे । तुम्हे एक हाथ की तलवार के युद्ध से सन्तोष न था इसलिये दानो हाथ से तलवार धलाने लगी धीर दौँत से घाड़े का लगाम मेंभालता थी । उधर रामचन्द्र देशमुख बचा बचाकर सड रहा था क्योंकि उसे महारानी की सीपे हुई याती की रक्षा भी तो करनी थी । सारा ग्नि घोडा की टाँपों से सिरदानियों के सिरों को पीकते रहे । अंग्रेज बिल्कुल घबड़ा गये थे । उस दिन भी उनको पराजय ही होने वाली थी कि एक सगीन वाले की सगीन रानी को छाती के नीचे लगा । खून का फीव्वारा फूट चला । इसकी भी तुम्हे परवाह न था, तुम्हे था एक सच्ची लगन थी स्व-तन्त्रता प्राप्ति की । घात की बाड में तूने उस सगीनदार की मौत के पाट उतार दिया । भ्रम दुश्मन केवल भाठ दम ही बच रहे थे जो तेरे पीछे-पीछे लग हुये थे । रघुनाथ सिंह समीप थे तूने उन्हें सचेत किया कि अंग्रेज मेरे शरीर को छूने न पावें ।

एक अग्रज सलिक को गाली मुँर ने सीने में लगी । तुम्हारा जयजयकार बरती हुई वह वही डेर हो गई । योध्र ही रघुनाथ सिंह ने उसकी शूय दृष्ट को गाले से अपनी पीठ पर बाँधा । उर प्रसन्न मुग्ध से निकला भारतीय धीरा के मरने का यहो स्थान है ।

तूने घाड़े का भाग बढाते या लाया प्रयत्न किया लेकिन सब बिकरन हुआ । वह दो परों पर खडा हो गया । एक पग भा भाग न दश । इसी बीच दोय अंग्रेज सवार भाँ घा पहुँचे । एक गारे ने तेरे ऊपर विस्फोत का थार किया,



निशाना धक्कू था। तेरी बाईं जाँघ गोली के आघात से बेकार हो गई। उस गोली चलाने वाले को तूने बात की बात में सुला दिया। फिर धोड़े को एठ लगाई लेकिन फिर भी प्रयाम विफल रहा। अब फेरल ने अर्जेज सैनिक गोप रह गये थे। अब सब और समाप्त चले आये। इसी बीच तूने एक हाथ की तलवार फेंक धोड़े की अपाल पकड़ी और पुन बीरासन में धोड़े पर बठ गई। एक हाथ की तलवार से युद्ध करने लगी। एक गोरे सैनिक ने छिपकर पीछे गे तेरे मिर पर तलवार का वार किया जिससे सिर का दायाँ हिस्सा और दाईं आँख छटवकर गिर पड़ी। तिस पर भी तूने अपनी बाल संगिनी तलवार से उनको पृथ्वी पर सुला दिया। इसके बाद दानो विधर्मियों की छाती पर धात रखकर खड़ी हुई जैसे शुम्भ निशुम्भ दैत्यों की छाती पर राणअएदो खड़ी हो। मुख से निकला भारत माता की जय। इतना कहते-कहते बाल सखा तलवार हाथ से गिर पड़ी और तू भी मूर्च्छित हो गई।

रघुनाथ सिंह और देशमुख ने तेरे मूर्च्छित शरीर को संभाला। अपने धोड़े पर बठाकर उस और ले चले जहाँ मात्र फूँकने वाले बाबा गंगादास की कुटी थी। कुटी के सम्मुख पहुँचकर रघुनाथ सिंह ने तुझे रेखम के साके पर सुला लिया और बगल में बाल सखी मुदर को। तेरी साँस धमा धीरे-धीरे चल रही थी। बाबा जो कुटी से बाहर निकले तो दखा कि स्वातन्त्र्य भवन की नींव की ईंट माता के अचल पर पड़ी हुई है। पास जाकर देखा अभी तुझमें कुछ जीवन था। कुटी से कमराठानु साकर मुह में गगाजल छाया। नेत्र खुले प्रेम और संतोष के भाँसू छाये हुये थे मुँह खुला केवल इतना ही शब्द साफ-साफ सुनाई पड़ा—  
नन दहति पावक'। और तू सर्वदा के लिये मौन हो गई। तपस्वी ने अपनी निधि कुटिया को उसाड़कर उसकी सक्ठी से तुम्हारी और तुम्हारी सखी मुदर की चित्रा बनायी।

माँ पावक ने प्रसन्नता और संतोष के साथ तुझे और तेरी सखा मुदर को गान में बठा लिया जिसके एक-एक स्फूर्तिग में बीरांगनामा का पावन अरित्र चमचमा रहा था। बालक दामोदरराव को लेकर रामचन्द्र देशमुख दक्षिण भारत चले गये।

कॉसी  
की  
रानी



## मगलाचरण

जो है आनन्दन महाशक्ति  
जिससे है रक्षित दिग्दिगन्त,  
उद्भव - विकास - आनन्द-धाम  
जिससे धरणी का आदि-अन्न,

जग के आदान प्रदानों में  
जिसकी गरिमा है लाल-लाल,  
जा अम्बर से भूतल तक है  
सुरदायक गौरवमय विशाल,

मधु - कैटभ का जीवन पीकर  
जिसकी आँसू हैं रक्त-रण,  
जिसके भय से डगमग हिमनग  
यसुधा का कम्पित पण-पण,

निमके पयि सम पद के नीचे  
दय स्वग सिधार था निशुम्भ,  
होते ही जिसकी भृशुटि वक्र  
शाणित से भरता कुम्भ-कुम्भ,

है महाजलधि का शक्ति उर  
मुँह तक आ जाता पाप-पाप,  
शिय शिय भनते मरु, रनि, उडुपति  
नम में पद रखते नाप-नाप,

सुर-असुर सभी कल्पित कर से  
देने लगते हैं अर्घ्य-दान,  
अयनी अचल पर क्षण में ही  
होने लगता है प्रलय-गान,

अम्बर में लक्षकर पिन्नी सी  
जिसकी चमचम चबल कटार,  
दो उठता महा महाधर का  
उर भी अति कल्पित एक बार,

घनमय अम्बर भी सिहर-सिहर  
भजने लगता है राम-राम,  
वसुधा दिग्दिक् से है कर्ती  
हे अयध-धाम-अभिराम राम !

डगमग-डगमग घरणी करनी  
होते रवि के घोड़े मरांक,  
अपने पय से निचलित हाथर  
शक्ति चलते ये चाल धरु,

दृढ़ व्रत कमठ दुःसह दुर से  
व्याकुल होकर फरता धर-धर,  
रसहीन मग्स्थल के उर से  
यह चलता यारि विहँस भर-भर,

लिरा रहा पवन रजित पट पर  
है घूम घूम निसका मुनाम,  
उस महाशक्ति के चरणों में  
शत शत प्रणाम, शत शत प्रणाम ॥

## ज्योति

अहोरात्र में प्रकृति बबू ने  
मिलकर हँसनेवाली कौन ?  
शिशिर फणों की विमल उगम  
जगमग करनेवाली कौन ?

निचन म वन की रानी को  
नित्य जगानेवाला कौन ?  
महाजलधि के शातल उर म  
आग लगानेवाली कौन ?

चन्द्र-सूय जिसके प्रहरी हैं  
मन को हरनेवाली कौन ?  
उध हिमालय के मस्तक पर  
नित्य विषरनेवाली कौन ?

चन्द्र पथ में विमल चाँदनी  
बनकर आनेवाली कौन ?  
धन - उपवन म, सुमन-सुमन में  
मधु धरसानेवाली कौन ?

निश की अलसाई पलकों को  
हँसकर घोनेवाली कौन ?  
नपनों में सोई यमुधा की  
निद्रा खोनेवाली कौन ?

जग में निर्गुण-सगुण-रूप में  
छिपकर आनेवाली कौन ?  
सुगम अगम के गूढ तत्त्व को  
विहँस यतानेवाली कौन ?

वृषित तितलियों की पाँखों को  
कर से रगनेवाली कौन ?  
महाप्रलय में भी हँस-हँसकर  
सुप्त से जगनेवाली कौन ?

मसि-कागज के श्रमल भवन में  
दीप जलानेवाली कौन ?  
मायामय रजनी में धनि का  
पथ दिखलानेवाला कौन ?

जिसे खोजकर हार गया जग  
फटता यह मतवाली कौन ?  
विरव मोहिनी रूपा धाला  
मायामय छविवाली कौन ?

सृष्टि प्रलय-पश्चात् अवनि पर  
एक यही है जो है मौन ।  
निराकार साकार रूप में  
राज रही है होकर मौन ॥

वही जगत् का आदि अन्त यन  
जग-रचना करती है मौन ।  
प्रथम गगन को फिर भूतल का  
तेजोमय करता है मौन ॥

बुद्धि-मन्त्र से यही निकलकर  
हृदय-मन्त्र म होती मौन ।  
जग म फिर आनन्दनाट का  
फैलाती ह होकर मौन ॥

वही सघन घन म चपला ह  
हर में आत्म रूप ह मौन ।  
सकल निरन को निव्य जगाती  
स्वय यनी रहती ह मौन ॥

वही राम ह, वही कृष्ण ह,  
वही ब्रह्म है जो ह मौन ।  
वही शत्रु ह, वही अथ ह,  
वही काव्य ह जो है मौन ॥

प्रेम वही है, राग वही ह,  
त्याग वही ह जो ह मौन ।  
ज्ञान वही है, सत्य वही है,  
शिष्य वही ह जो ह मौन ॥

नाम ज्योति सुन्दरतामय ह,  
कणधार ह होकर मौन ।  
धरणी, गगन, अनन्त दिशा को  
भासमान करती ह मौन ॥





**परिचय**



## भाँसी की रानी

लेकर स्वतन्त्रता के ध्वज को  
निभय फहरानेवाली थी ।  
रणचण्डी के प्राधानल सम  
घनकर लहरानेवाली थी ॥

वह राज-योग का भस्म लगा  
नित अलख जगानेवाली थी ।  
रणभेरी के ख म स्वर भर  
वह वीर धनानेवाली थी ॥

'तुम जगो वीर घुन्देलखण्ड'  
यह मन्त्र फूँकनेवाली थी ।  
निज मातृ-भूमि के अर्चन में  
वह नहीं चूकनेवाली था ॥

निद्रित भाँसी के कण-कण में  
नव शक्ति जगानेवाली थी ।  
इस वीर - भूमि की पूजा में  
सर्वस्व चढ़ानेवाली थी ॥

यह महामृत्यु घनकर अरि के  
सिर पर मँटरनेवाली थी ।  
जीवन पी-पीकर अरि-कुल को  
हर-सोक पठानेवाली थी ॥

जिसने जीवन के सफट की  
लपटों में भी हँसना सीखा ।  
असि जिह्वा लेकर नागिन की  
त्रिपदाओं को डसना सीखा ॥

निज प्राण हथेली पर लेकर  
घन, सरिता, अगम पहाड़ों में ।  
बह जगा रही थी नई शक्ति  
सब सोनेवाले हाड़ों में ॥

ले समर सिन्धु कर-गण्डुलि पर  
बह रखकर पीनेवाली थी ।  
ले प्रेम-तन्तु स्वातन्त्र्य घस्त्र  
निज कर से सीनेवाली थी ॥

रानी का रण हुद्दार प्रयत्न  
नभ में है अब भी गूँज रहा ।  
रानी का जय जयकार सतत्  
भारत मानस में गूँज रहा ॥

रानी अब भी है डोल रही  
कण-करण में नूतन शक्ति बनी ।  
अब भी वह देवी डोल रही  
इस विश्व-हृदय में भक्ति बनी ॥

(नखर तन से है दूर, किन्तु  
जिह्वा पर अमर कहानी है ।  
स्वातन्त्र्य घत्स कहता रहता  
माँ भाँसीवाली रानी है ॥

जितन सप्तावन में बलि दी  
उसकी ही कथा सुनानी है।  
जिसके जीवन के तत्वों की  
हम सबका स्मरण कहानी है ॥

# नारी-सेना

जिसको था अब तक समझ रहा  
जग वैभय म पलनेवाली ।  
नय रूप कुसुम की माला यन  
मन मन्दिर म चढ़नेवाली ॥

वह आग धरा पर बिहँस रही  
है फूल यनी अगारों में ।  
चढ़ रही शत्रु की छाती पर  
घरछी, भालों, करवालों में ॥

वह एक यनी है गरुड़ सदृश  
तत्क दल की फुफकारों में ।  
वह अचल यनी है अचल रखी  
अरि सेना की ललकारों में ॥

पद पायल की ध्वनि गूँज रही  
हथियारों की झनकारों में ।  
मुख सौ सौ रथि सम दमक रहा  
रिपु दल के तीखे वारों में ॥

यह धार धार फड़ती धड़ती  
'तलवारों की परयाह नही ॥  
है स्थतन्त्रता की एक चाह  
अब और दूसरी चाह नहीं ॥

यस एक पन्थ है बढने का  
अरि-दल की विकट फटारों में ।  
यस एक दाह है उठी हुई  
तलवारों में तलवारों में ॥

उद्दिष्ट भूमि वह दूर नहीं  
जिस पर हँस रक्त बढाना है ।  
अथ वह दैवत है दूर नहीं -  
जिस पर हँस प्राण बढाना है ॥

जिस पर बढकर रणधीरों ने  
नरवर जग में भरना सीखा ।  
भारत के वीर सपूतों ने  
रण-सिन्धु त्वरित तरना सीखा ॥

है जन्म-भूमि स्वातन्त्र्य जहाँ  
यस चलकर वहीं समाना है ।  
निज रूप कुसुम की माला से  
माँ का गृहकार सजाना है ॥

यदि धन, नद, नदी पहाड़ों में  
स्वातन्त्र्य - सौख्य को पाना है ।  
तो मेरे लिये यही प्रतिपल  
प्रासादों - सा सुख घाना है ॥

यस एक प्रतिज्ञा है मेरी,  
माता को मुक्त बनावूँगी ।  
अमर के मस्तक पर सहर्ष  
नय धीर्ति - ध्वजा फहराऊँगी ॥



विप्लव के गायन गा-गाकर  
जग को यह पाठ पढ़ा दूँगी ।  
यदि समय कहेगा तो हँसकर  
मैं प्राण प्रसून चढ़ा दूँगी ॥

---

## तलवार

बचा लो हृदय । बचा लो शीश ।  
घरा पर होता चल्कापात ।  
अरे ! यह तो विप-निधि की स्वच्छ  
प्रभा - सम चमक रहा अहिनात ॥

अभी यह शुद्ध चाँदनी तुल्य,  
पलक गिरते होती है काल ।  
एक क्षण प्रीया को यह चूम  
त्वरित होती किसलय सम लाल ॥

अलौकिक इसका सुन्दर वेप  
प्रवल घोड़े पर है आरूढ ।  
स्वय मॉँसी की रानी वैठ  
सँभाले है यह बलगा गूढ़ ॥

पवन को घोर, चमकती हुई  
गगन का लेती है यह चाट ।  
रुधिर में करती हैंस-हँस स्नान  
मुण्ड से देती है भू पाट ॥

कपचा का रचकर सोपान  
बढ़ी जाती है नम की आर ।  
प्रभा ! इस प्रलय - रूप का चहँ  
नहा है कहीं ठिकाना छोर ॥

अभी थी इधर, इधर अब नहीं  
किधर वह गइ पवन को चीर ?  
अरे ! वह देख, उधर सिर काट  
दूर कर रही विघ्न की भीड़ ॥

न जाने इसकी कितनी व्यास  
जीभ में कितना भारी ताप ।  
कि जीवन जिसका करके स्पर्श  
स्वरित बन जाता केवल भाप ॥

विवस, निश, प्रहर, घटी, विनिमेष  
सदा जगती रहती यह व्यास ।  
जिसे शीतल करने के हेतु  
हो रहा अरि उर सिन्धु हताश ॥

धरा पर स्वय हुआ अवतीर्ण  
आज त्रेता का लफा दाह ।  
प्रयत्न निसके पानिप के बीच  
नहां मिलती प्राणों को राह ॥

इसी से अरि-मुण्डों के बीच  
हूँ दंत प्राण शान्तिमय स्वर्ग ।  
कभी लुंठित सिर हैं मुँह खाल  
पूछते इश ! फहाँ अपवर्ग ?

देख यह इन्द्रजाल का खेल  
विकल होते हैं दबी दूत ।  
सोचते किस पथ से ले जायँ  
स्वर्ग को माँ के धार सपूत ॥

असंशय यह है माया-रूप  
यहाँ आया धूलने ससार ।  
अरे ! क्या भूल रहा रे विश्व ।  
स्पष्ट यह रानी की तलवार ॥

---

## सुन्दर और मुन्दर

स्वातन्त्र्य भवन का दीपक  
अविरल अविराम जलेगा ।  
माँ के आँचल पर निर्मल  
आलोक नवल लहरेगा ॥

बिम्बों की तिमिर घटा यदि  
चाहेगी उसे छिपाना,  
अरि-दल पतग बनकर यदि  
चाहेगा उसे बुझाना,

आँधी बनकर रण में तो  
मैं तम घन-नाश करूँगी ।  
ज्योतिर्मय अखनी का मैं  
रच-रच शृङ्गार करूँगी ॥

रानी से भी पहले मैं  
यह हृदय दीप भर दूँगी ।  
जीवन की ज्योति चढ़ाकर  
नव विमल प्रकाश करूँगी ॥

पूजा की है यह बेला  
अरि प्राण प्रसून खवेगा ।  
नश्वर शक की आहुति से  
माँ का सम्मान थड़ेगा ॥

आओ अस्मि । बाल सखी हे  
नहला दो अय शोणित से ।  
इस युद्ध पर्य पर नूतन  
शृङ्गार करो लोहित से ॥

यह कर्णवती का स्थल है  
पन्ना का हे रत्नवाला ।  
हाडारानी का हँसता  
है यहाँ सतीत्व निराला ॥

उन सतियों की है यह भू  
जो पति का साज सजाती ।  
निर्मय कर में अस्मि देकर  
सगर में विहँस पठाती ॥

माताओं ने इस भू का  
हँस हँस सम्मान किया है ।  
प्राणों से प्यारे सुत को  
इस पर पलिदान किया है ॥

उनकी ही शप कहानी  
यह भाँसी की रानी है ।  
उनकी गति इस जगती म  
अरि - हरणी पहचानी है ॥

इस पर ही सदा जगी है  
सतियों की जौहर ज्वाला ।  
इस पर ही विहँस चढ़ा थी  
नारात्य पुसुम का माला ॥

देखूँगी रानी पर अब  
फिस अरि की आँख उठेगी ।  
मुन्दर मुन्दर की असि से  
उसकी सब साख मिटेगी ॥

## घोडा

जिसने रानी की पूजा की  
यह वही बाजि मतवाला है। -  
स्वामी से पहले वेदी पर  
निज प्राण चढानेवाला है ॥

हटकर जो अरि की सेना पर  
अन्तक धन - धनकर लहराया।  
जिसने सत्ताधन का मण्डा  
नभ के मस्तक पर फहराया ॥

जिसन रिपु दल में भय भरकर -  
हँस - हँस रण सागर पार किया। -  
सत्वर माँ की परवराता का  
बन्धन था जिसने तार किया ॥

जो सिंह सट्टा धन जाता था  
मद - मस्त गजों की चालों में।  
यह पवन सट्टा लहराता था  
बरछी, भालों, परवालों में ॥

यह शत्रु नगों के शिखरों का  
क्षण मं कण कण कर देता था।  
रानी के पथ की पाधाँ  
हँसता हँसता हर लेता था ॥



वह अरि दल से कहता बढ़कर  
मेरी है विजय लिखो झुककर ।  
यदि लड़ना हो तो लड़ ही लो  
मेरी टापों से तुम आकर ॥

यह कह-कहकर हर हर गति से  
रानी को ले लहराता था ।  
मिलसा न समीरण को पथ था  
हय चालों में रुँध जाता था ॥

फिर कौशल से मोहित होकर  
- हय के पीछे चल देता था ।  
मानो रानी के घोड़े से  
गति की शिक्षा वह लेता था ॥

धन से शोणित के निर्मल भी  
झर-झर झर झर-झर झरते थे ।  
मारुत में चल कौशेय बाल  
फर फर फर फर-फर करते थे ॥

घायों की चिन्ता उसे नहीं  
वह बन्धनमुक्त निराला था ।  
राना का था वह प्राण, किन्तु  
स्वातन्त्र्य भाव मदनाला था ॥

रानी की विमल कहाना में  
उसका भी अमर कहानी है ।  
रानी की अनमिट गाथा में  
उनका सक्रियता मानी है ॥

## भाँसी का दुर्ग

है यही दुर्ग उस राना का  
जो कण-कण में है रमी हुई।  
हो चकित गगन से पूछ रही  
सगर में क्या थी कमी हुई ?

दुर्जय दुग है आज शान्त  
धीरे धीरे है बोल रहा।  
निसकी ऐसी गति देख-देख  
शकर का आसन डाल रहा ॥

रय यही निकलता है गढ़ से  
पूजन कर लो उस रानी का।  
मेरी छाती पर धधक रहा  
है चरण चिह्न सिर दानी का ॥

मेरे कण कण में रानी के  
हँसत स्वदेश के प्यार द्विपे।  
माँ बहना के उद्गार द्विपे  
असि नागिन के फूटकार द्विपे ॥

मरी भोधानल ज्वाला से  
दिनभर रवि तपता आता है।  
सुभम रानी का अमल नाम  
'नय काला' भजता आता है ॥

है चाद न अक्षत-फूलों की  
है चाद नहीं जलपानों की ।  
मुझको तो स्मृति फिर-फिर आती  
माँ-बहनों के सम्मानों की ॥

मेरे घर में हूँ घबक रही  
वह ज्वाला सती भवानी की ।  
मुझको है स्मृति माताओं की  
उनकी आँसुओं के पानी की ॥

मेरे कण-कण रंम गूँज रहा  
है रजपूती अभिमान अभी ।  
भाला का जीवन-त्याग अमल  
गौरा का अधिरल गान अभी ॥

भाँसी ! तुमका जगना होगा  
कुछ धीर-कथा कहनी होगी ।  
हँस दोस्तो तुम मेधाङ्ग-धीर !  
कुछ सता-व्यथा कहनी होगी ॥

जागो हे चारो घाम । पुन  
जागो हे त्याग तपस्वी के ।  
जागो हे छत्रिय के जीहर  
जागो आदर्श मनस्वी के ।

मैं चला आ रहा हूँ युग से  
माँ-बहनों का सिद्धर लिए ।  
हँस-हँस पति सँग दावानल में  
सोई सतियों की रास लिए ॥

- ५१ -

हे समय । घटा कय आवेगी  
मूतल की नई जवानी अथ ?  
हे अम्बर । घटा भुजगिनि ले  
अथ आवेगी महारानी कय ?

## रानी का उद्बोधन

खोलो द्वार सजग प्रहरी तुम । हे युग की असि । जाग उठो अथ  
 सोते हो तो जाग उठो । मौन मुहागिन । जाग उठो ।  
 हे स्वतंत्रता के विलास । तुम जिसके हसने में विष लहरें  
 जाग उठो, हँस जाग उठो ॥ प्यासी नागिन वह जाग उठो ॥

जाग उठो हे शक्तिदायिनी ।  
 माँ रुद्राणी । जाग उठो ।  
 जाग उठो हे पूज्य तपस्विनी ।  
 माँ फल्याणी । जाग उठो ॥

जाग उठो माँ सिद्धिदायिनी । जागो जौहर की ज्वाला में  
 दुर्ग विनाशिनि जाग उठो । रमी देविमो । जाग उठो ।  
 जाग उठो माँ शैल नन्दिनी । माला लेकर फिर सतीत्व धर  
 शिवा भवानी । जाग उठो ॥ सोइ सतियों । जाग उठो ॥

जाग उठो माँ सिद्धाहिनी ।  
 विश्वकारिणी । जाग उठो ।  
 दत्त-सुता । ईश्वरी । अपणा ।  
 विघ्नहारिणी । जाग उठो ॥

जाग उठो हे विध्यवासिनी । धोमल याहों में धल भरकर  
 उमा । भवानी । जाग उठो । उर में भारत-प्यार भरो ।  
 जाग उठो पतिभक्ता । देवी । सत्य मार्ग तुम मुझे बताकर  
 अम्बा । माया । जाग उठो ॥ यह संवा स्वीकार करो ॥

**पहली हुंकार**



धीरे युग की है घात, किन्तु  
इसको ही आन सुनाना है।  
इस धीरे मंत्र से भारत के  
कण कण को आन जगाना है ॥

सो रही रास में सन गति-मति  
जर्जर हो रही जवानी है।  
उसकी औपधि केवल जग में  
रानी की अमर कहानी है ॥

रा रही आन है आर्य भूमि  
सो रहा आन गुरुद्वारा है।  
इस पुण्य भूमि के गौरव की  
गाथा ही एक सहाय है ॥

रो रो कहते अपना विपदा  
सागर से चारों घाम बिकल।  
गिरिराज दृगा से गरम अधु,  
मरिताओं में बहते अविरल ॥

इसलिए धीरे शाण्डित रजित  
विषय ध्वज फिर फहराना है।  
मुण्डा की सीढ़ी बना बना  
अम्यर तट इस उठाना है ॥



उर के शोणित से लिखा हुआ  
मों का आख्यान सुनाना है।  
कोने कोने में अक्षरी के  
पूर्वज का मन्त्र पढ़ाना है ॥

पाठक ! हा जाओ सावधान  
रानी का मन्त्र सुनाना है।  
मानस की पावन मधु माला  
चरणों पर आन चढ़ाना है ॥

हो गई यामिनी थी पीली  
धरणी शृङ्गार सजाए थी।  
मिलमिल मोती के हारों में  
नूतन अनुभाव छिपाए थी।

हँसकर मर सरिता के मानस  
उर में उद्गार जगात थे।  
पंखी नीड़ों में बैठ-बैठ  
प्रभु का मुख से यश गाते थे ॥

सपनों का राज्य सलोना था  
मन का उन्माद निम्बरवा था।  
बसुंधा के आचल पर निशि भर  
मानस का भाग्य विखरता था

निशि भर पकज के मानस में  
बन्दा मधुधर अकुलाते थे।  
हाली पर थठ मुजंगे भी  
ठाकुर ठाकुर जा गाते थे ॥

सपनों के रजित उपवन में  
दो प्रणयी सुख से सोते थे।  
कामना घाज वे विहँस विहँस  
नय भाव क्षेत्र में थोते थे ॥

मनमाना मन था विचर रहा  
चेतना सान्त हो सोई थी।  
उस माया की छाया म भी  
आशा सी तरुणा कोइ था ॥

मगलमय चाहों सी लम्बी  
उमकी घेणी थी भूम रही।  
माता के स्नेह सदश मुककर  
दोनों को वह थी चूम रहा ॥

उसके रक्तिम करपल्लव में  
फलपना सदश कमलता थी।  
मधुमयी मृगी सी आँखा में  
योगी के मन सी स्थिरता थी ॥

चमचम हिम नग पर सोइ थी  
स्वच्छन्द भाव से गाती थी।  
वह कभी विलासों पर साकर  
मदमाती सी चल स्वाती थी ॥

दिन में रवि के कर पर चढ़कर  
पृथ्वी पर आती जाती थी।  
निशि म घृन्दारक के सँग-सँग  
वह स्वर्गलोक हो आता थी ॥

वह वभी तारिका से मिलकर  
कुछ मद्-मन्द मुसकाती थी।  
योगी यत्न नम की गंगा म  
वह विधु के साथ नहाती थी ॥

वह सरल बालिका थी उस पर  
कोई अधिकार न पाता था।  
उसका वह निश्चल तेज पुञ्ज  
यम के उर पर घहराता था ॥

कहते स्वतन्त्रता भी उससे  
जग मे वह एक निराली है।  
सरिता, निर्भर रझाकर के  
फलरव म रमनेवाली है ॥

सच्चे मानस की छाया में  
माग से परे विहँसती जो।  
सौन्दर्य रूप में रमी हुई  
लज्जा के साथ गरजती जो ॥

भावना सदृश फोमलता में  
धीरे धारे सिमटी आती।  
माघर के सुप्तमय शासन में  
लाली बनकर लिपटी आता ॥

आँसों था दोनों लाल-लाल  
वह मद् मन्द मुसकाती थी।  
धमधम तलवार दिग्गजर वह  
अन्तर को भी थराती थी ॥

वह मस्त सिद्ध पर बैठी थी  
मतवाली खप्परवाली थी।  
शोणित भर भरकर तनती थी  
दुगा थी, रण मतवाली थी।

ज्यों घर्म कर्म ५ सम्पुट में  
जीवन पलकर मोती होता।  
लावण्यमयी सिद्ध आभा में  
नित सत्य रूप भासित होता ॥

उस सत्य रूप को चूम चूम  
पीयूष धार बहती रहती ॥  
होती उसमें अनहद ध्वनि नित  
रागिनी मधुर बजती रहती।

वैसे नव धरणी सम्पुट में  
नव स्फटिक शिला मुसकाती थी।  
उससे छूकर जल की धारा  
फल फल ध्वनि में लहराती थी ॥

उस स्वच्छ शिला पर स्वतन्त्रता  
बैठी हा दुगा से खोली।  
धीरे धीरे भारत माँ की  
दुग्ध द्वन्द्व मरी भोली खोली ॥

दे आली। चलो चलें भू पर  
रत्नपूती शान बचाना हैं।  
तापम धाला की मुसद फया  
नन नन का अभा मुनानी ह ॥

वह कभी तारिका से मिलकर  
कुछ मद्-मन्द मुसकाती थी।  
योगी यन नम फ्री गगा मं  
वह विधु के साथ नहाती थी ॥

वह सरल बालिका थी उस पर  
कोई अधिकार न पाता था।  
उसका वह निश्चल तेज पुञ्ज  
यम के उर पर घहराता था ॥

कहते स्वतन्त्रता भी उसको  
जग म वह एक निराली है।  
सरिता, निर्मल रत्नाकर के  
फलरथ में रमनेवाली है ॥

सच्चे मानस की छाया म  
माग से परे विहँसती जो।  
सौन्दर्य रूप में रमी हुई  
लज्जा के साथ गरजती जो ॥

भावना सदृश कोमलता में  
धीरे धीरे सिमटी आती।  
माधव के सुखमय शासन में  
लाली धनकर लिपटा आती ॥

आँसों थी दोनों लाल-लाल  
वह मद्-मन्द मुसकाता थी।  
धमधम तलवार दिग्गजर वह  
अतक को भा धराता थी ॥

बह मस्त सिद्ध पर बैठी थी  
मतवाली रम्परवाली थी।  
शोणित भर भरकर तनती थी  
दुगा थी, रण मतवाली थी।

ज्यों घर्म कर्म के सम्पुट में  
जीवन पलकर मोती होता।  
लावण्यमयी सित आभा में  
नित सत्य रूप भासित होता ॥

उस सत्य रूप को चूम चूम  
पीयूष धार बहती रहती ॥  
होती उसमें अनहद ध्वनि नित  
रागिनी मधुर बजती रहती।

वैसे नभ धरणी सम्पुट में  
नय स्फटिक शिला मुसकाती थी।  
उसको छूकर जल की धारा  
फल फल ध्वनि में लहरती थी ॥

उस स्रग्ध्र शिला पर स्वतन्त्रता  
बैठी ही दुगा से बोली।  
धीरे धीरे भारत माँ की  
दुरग द्वन्द्व भरा भोली गोलोली ॥

हे आला! चलो चलें मू पर  
रनपूवा शान बचाना है।  
तापस पाला की मुपद क्या  
वन जन का अभा सुनानी है ॥

बह स्फटिक शिला आलोकित हा  
हँस पड़ी ब्रह्म की माया सी ।  
फट गई तमिस्रा अनायास  
उस चन्द्र प्रभा की काया सी ॥

दा शक्ति चमक कर एक हुई  
नभ की आँखें चमचमा उठीं ।  
ब दुग्ध धवल सुर सरिताएँ  
धरवट बदले मुसफरा उठीं ॥

चमचम अम्यर भी चमक उठा  
बह एक शक्ति सत्वर बोली ।  
सुप्तावस्था में दम्पति की  
आशा की भाली थी खोला ॥

हे अबले ! हो न हतारा अभी  
दुर्दिन में हँसती आशा है ।  
चचल जलनिधि की लहरों को  
व्यकुला कर रही पिपामा है ॥

मैं भी पृथ्वा पर आऊँगी  
जन जन में ज्योति जगाऊँगी ।  
अबला को सधला बना घना  
पावन आदर्श दिखाऊँगी ॥

घन प्रलय सदृश घहराऊँगी  
दावाग्नि समान जला दूँगी ।  
माता की लात घचाने में  
अपना सधस्व लुटा दूँगा ॥

कैलासाचल के फण-वण को  
अगार सन्श धधकाऊँगी।  
उस पर निर्ममता को क्षण में  
मैं भस्मीभूत बनाऊँगी ॥

भारत धरणी की इति भीति  
दावाग्नि समान जला दूँगी।  
फिर लज्जा की शुचिता धारा  
भूतल पर मैं लहरा दूँगी ॥

माता ! हर म मत करो शोक  
तुमको मैं शोश नवाती हूँ।  
अपनी हँसती इच्छाओं की  
मैं माला तुम्हें चढ़ाती हूँ ॥

हो गइ हमारा जननी तुम  
जगती तल भी पावन होगा।  
नारी-जीवन के आतप म  
हँसता रिचयी सावन होगा ॥

लकर सित घोड़े पर निज अस्ति  
चमकी यह देवी घाला सी।  
नय दिव्य प्रभा घन कौंध गइ  
घन मं विजली की माला-सी ॥

जग गण युगल प्रणयी सुख से  
मानयता घाटु पसार मिला।  
हुगा स्वतन्त्रता भूतल पर  
आता है, यह नय धार मिला ॥



वह विप्र - सुता निज प्रिय पति से  
मीठा घाणी म षोल उठी ।  
मानस सरसी की लहरों में  
थी भाव सुधा सी षोल उठी ॥

“कौतूहल का नव सिन्धु नाथ !  
मानस में आज उमड़ता है ।  
प्रात का मजुल स्वप्न अभी  
रह रहकर विहँस घुमड़ता है ॥

उसकी नव छाया अभी सतत  
आँखों में चित्र बनाती है ।  
मँजधार पड़ी तरणी की वह  
पतवार बनी लहराती है ॥

वह नव स्थण्डिल धरदान अभी  
सावन बनकर लहराता है ।  
मेरे भावी का माया पर  
वह विजय केतु फहराता है ॥

वह मूर्ति मुझे ऐसी लगती  
मानो भीतर मुसकाती हो ।  
अपने घर के साने-साने  
मेरे उर में घुन जाती हो ॥”

फह रही क्या मधुमय-स्वर में  
सुनते थे मोरोपन्त विहँस ।  
जैसे नीरव में सरिषा से  
सुनता उडुपति सुल-गान सुयश ॥ ।

पावन वसन्त में सौरभ से  
मिलकर कलियाँ मुसनाती ज्यों,  
चचल मद-मस्त हवाओं से  
मिल हरियाली लहराती ज्यों,

उत्ताल तरंगों विहँस विहँस  
मगलमय - पाठ पढ़ाती ज्यों,  
सवरगी - दुनिया बना मिटा  
सत्यान पवन बतलाती ज्या,

जैसे मुसकाती गोधूली  
नीरद पर चित्र बनाती है,  
आलोकमयी चचल - किरणों  
दुःख - सुख सम भाव बताती हँ,

वसे हाँ पति की सन्निधि में  
बह अथला भी हँस भूम उठा।  
उस घराहीन दुःख-रजनी का  
आलोक-धार थी चूम उठी ॥

उनको निश्चित निश्वास हुआ  
बह विमल - चन्द्रिका आवेगी।  
युग प्रणयी की सूनी गोदी  
सुख राशि भरी लहरावेगी ॥

आरामय लहरों से मिलकर  
सरिता तट है मुसकाता ज्यों,  
प्रातः सन्ध्या की आभा में  
गिरिराज छत्र लहराता ज्यों,

घचल घपला की कौंध लिए  
घनमय श्रम्यर घहराता ज्यों,  
लेकर माघय से पुष्प दान  
घन घन तर-तर मुसकाता ज्यों,

वैस ही मारापन्त साधु  
जाया का लेकर मधुर भाव ।  
फाली स्वतन्त्रता देवी की  
कर रहे अर्चना भरे षाव ॥

हँस पड़े नियति भा बिहस उठी,  
नय इद्रजाल का मुकुल खिला ।  
प्रतिपल कण-कण हँस-हँस कहता  
है विप्र ! किशोरी रत्न मिला ॥

युग युग की मौन निराशा से  
आशा मुसकाती गले मिली ।  
उस प्रणय सरोवर बीच नवल  
लहराती कोमल कली खिली ॥

घोला यह विप्र 'उठो सरले !  
चलकर गंगा में स्नान करें ।  
इस दिव्य शम्भु की नगरा में  
हम यथाशक्ति पुद्ग दान करें ॥'

घन पड़े युगल - प्रणयी कहते  
जय कारी के अभिराम प्रभो !  
जय श्रवध घाम पे विमल हृत्प  
जय फाशल्या क राम प्रभा !

पावन वसन्त में सौरभ से  
मिलकर कलियाँ मुसकाती ज्यों,  
चचल मद-मस्त हवाश्रा से  
मिल हरियाली लहराती ज्यों,

उत्ताल तरंगों विहँस विहँस  
मगलमय पाठ पढ़ाती ज्यों,  
सतरंगी दुनिया बना मिटा  
उत्थान-पतन बतलाती ज्या,

जैसे मुसकाती गोधूली  
नीरद पर चित्र बनाती है,  
आलोकमयी चचल किरणें  
दुरल सुख सम भाव बटाती हैं,

यसे ही पति की सन्निधि में  
वह अचला भी हँस मूम उठा।  
उस वशाहीन दुरल-रजनी का  
आलोक धार थी घूम उठी ॥

उनको निश्चित विश्वास हुआ  
वह विमल चन्द्रिका आवेगी।  
युग प्रणयी की सूनी गोदी  
सुख राशि भरी लहरावेगी ॥

आरामय लहरों से मिलकर  
सरिता तट है मुसकावा ज्यों,  
प्रातः सन्ध्या की आभा में  
गिरिराज छत्र लहरावा ज्यों,

जिस समय उठाई अचला ने  
माला उपहार चढ़ाने को ।  
कचन के चचल फलित ललित  
भास्कर को विहँस मनाने को ॥

उस समय कुचि के बीच उसे  
सुन्दर प्रतिमा सी छात हुई ।  
अचलोक जिसे थी स्वयं शची  
सौन्दर्य राशि से मात हुई ॥

सहसा दोनों दृग्वन्द हुए  
वह रूप-राशि दमदमा उठा ।  
शोणित की प्यासी अक्षि लेकर  
वह चम चम, चम चमचमा उठी ॥

करके तब स्नान द्विजोत्तम ने  
शिव, शिव भजते प्रस्थान किया ।  
प्राची-नाद से रवि ने हँमकर  
रथ पर चढ़ तुरत प्रयाण किया ।

तट पर बैठे थे वीन-दुरी  
देता द्विज उनसे दान चला ।  
देते थे आशीर्वाद सभी  
जय गगा मैया करें भला ॥

हा गया नित्य का काम यही  
मँह मँह करता था रम्य भजन ।  
उस पुण्य प्रती से हवि पाकर  
था गंध घोंटता पुण्य पवन ॥

सुख पीला होता जाता था  
भीतर अरुणाइ धाती थी।  
मानस-सागर की उर्मि विहँस  
उठती बढ़ती लहराती थी ॥

लेकर पावन सन्देश  
नव मास थीता जाता था।  
आनन्द घघाइ धनती थी,  
मधुमास विहँसता आता था ॥

करते करते सत्कर्म धर्म  
धीते पूरे नौ मास अभय।  
ये नहीं समाते ये फूले  
मन विचर रहा था नित निर्भय ॥

तब शरद जुन्दाइ फैल गई  
हा गये सरोवर जल निमल।  
प्रतमय निशुद्ध उम दम्पति के  
मानस में विकसे अमल - कमल ॥

कार्तिक की दुग्ध-धवल रजनी  
तारक - माला पहनाती थी।  
अगणित लाकों को अफ भर  
अम्वर - सुरसरि लहगता थी ॥

धरणी मोता से सन धजकर  
कोमल शैव्या फैलाती थी।  
मिस्त्री बँठी प्रसुद्धि मन से  
बाण का तार धनाती थी ॥

कोमल रक्तिम-नख किसलय में  
कलियौ भूपण्य धन सजती थी ।  
सुकुमार भार से दबी हुई  
शशि किरणें उन्हें धरजती थी ॥

दिनभर का ध्रान्त समीरण भी  
गतिहीन शिथिल झलसाता था ।  
धन, सरिता, सागर के ऊपर  
निज कोमल पर फैलाता था ॥

प्रसुद्धित मन से जग महाराष्ट्र  
धीत दिन का गुण गाता था ।  
अम्बर अगणित कल्पना लिए  
मधुमय भविष्य दरसाता था ॥

नर मधुर गुलामी शीतलता  
चन्द्रिका प्रसन्न लुटाती थी ।  
राका यौवन की सीमा पर  
लज्जा से मिला मुसकाती थी ॥

वह मधुर हसा भर लेने को  
कुमुदिनी पटल फैलाती थी ।  
रजनी शुभ बेला देत नखल  
मुक्ता की राशि लुटाती थी ॥

सहसा विपदा-धन-पटल चीर  
वह एक शक्ति भू पर आई ।  
उस घती विप्र की दुहिता धन  
लक्ष्मी लक्ष्मी धनकर आई ॥

माता के स्नेह सरोवर में  
वह सरस लहर बनकर आई।  
नित चन्द्रकला सी बढती वह  
नय-बपल भाव लेकर आई ॥

थे जननी जनक प्रसन्न और  
उर में सुख-भाया थी छाई।  
उनकी अभिलाषा रूप बदल  
आई धन स्वय मनुष्याई ॥

पावन प्रकारा के मिटने पर  
धन अन्धकार लहराता है।  
सानन के पीछे धरणी पर  
धन बुद्धि-भार घहराता है ॥

उस भौंति युगल प्रणयी पर भी  
विपदा का बादल मँडराया।  
सुख से मुसफात फूलों पर  
हिम बनकर तत्क्षण आ छाया ॥

शराव के बीये बत्सर म  
ममता माया से छली गई।  
लाङ्गिली मनु को छोड़ अम्य  
हर-लोक मौन हो चली गई ॥

चल घसे चिमात्ता भी उनके  
जीवन-दाता आश्रय दाता।  
तिनने शमय पर ही द्विन का  
था परा मदा पोषण पाता ॥



उनको विदूर से उसी समय  
था मिला एक सन्देश नया।  
थी वाजीराघ पेशवा की  
जिसमें मुसकाती विमल दया ॥

आह्वान किया जिसने द्विज को  
पावन विदूर में आने का।  
अपनी सुकुमारी कन्या की  
जीवन कलिका विकसने का ॥

पाकर सन्देश द्विजोत्तम ने  
शकर को मुदित प्रणाम किया।  
पावन विदूर के लिये भगन  
काशी से शुभ प्रस्थान किया ॥

दूसरी हुंकार



हो रहा समर या निशदिन ॥  
वसुधा के धूमिल-अचल पर।  
जिसका आतक गरजता था  
भू के कम्पित दल दल पर ॥

यह समर देखने को रवि भी  
चढ़ गण उदयगिरि के सिर पर।  
जिसके प्रताप से शिखर स्वर्ण  
यह चला पिघलकर भूतल पर ॥

उदयाचल के लाला का है  
प्रार्थी की काला निभरिणा।  
जो धन का नीली सरिताएँ  
सिन्दूरा सुन्दर सी तरिणा ॥

हैं सूर्यदेव के साथ-साथ  
य अरुणदेव वैभवशाली।  
जिनके पद पर हैं अनुज गरुड़  
नत मस्तक ले अक्षत धाली ॥

जिनके पगों का शरद कान्ति  
क्षिति पर लहराती स्वर्ण धरा।  
हैं वय अग्नि का नर प्रकाश  
नभ से भूतल तक रक्त धरा ॥

युग भ्राता के मिलने से यह  
धन गई शुभ्र अति प्यारी है।  
प्राची की यह शोभा जिसकी  
धसुधा पर सबसे न्यारी है ॥

पावन प्रकाश का विजय हुआ  
भागी रजनी अरुनी तल से।  
अचला थी मगन विनय को लख  
दृग-कमल खोल अचल-जल से ॥

विहँसी युग की सोइ वाली  
प्रकाश का विमल प्रकाश हँसा।  
हँस पड़े दिगम्बर भूतनाथ  
दमरू, त्रिशूल, कैलाश हँसा ॥

या क्षीर सिन्धु का हृदय मुदित  
उस पर सोये कमलेश हँसे।  
सुर सेवित शुभ सिंहासन पर  
धे शची - सहित अमरेश हँसे ॥

प्राची विहँसा, पश्चिम विहँसा,  
युग का सोया करवाल हँसा।  
जिससे चमचमा करता क्षण म  
पावन नगपति का भास हँसा ॥

मानवता के आदर्श हँसे,  
दानवता का संहार हँसा।  
गुरुता का पावन भार हँसा  
युग का सोया उपहार हँसा ॥

सजला के पावन रूप हँसे,  
शृङ्गारों का सम्भार हँसा।  
लज्जा के रक्तक भूप हँसे  
नारी-जीवन का सार हँसा ॥

युग के सोए आश्रम विहँसे  
ये सामवेद के गान हँसे।  
विहँसे व्रत के अमिराम श्याम  
श्री कौशलेश भगवान् हँसे ॥

धं भातु सुता के तट विहँसे  
सरयू के उर्मिल पट विहँसे।  
सरिता विहँसी, निम्नर विहसे,  
भूतल के भारी भट विहसे ॥

पवत विहँसे, उपनन विहँसे,  
कंकड विहँसे, पत्थर विहँसे।  
तरु-शृण विहँसे, रज-कण विहँसे,  
सोए सगर क स्वर विहँसे ॥

विहँसा भूतल का महामाल  
सावित्री का धरदान हँसा।  
सीता की अग्नि परीक्षा का  
पावन वद अमिट विद्वान हँसा ॥

युग ५) सोयी ममता विहँसी,  
ये पंचवटी के राम हँसे।  
हँस पड़े हिमालय, विन्ध्य, मरु  
भारत के चारों धाम हँसे ॥

युग की सोई माँ बहनों के  
जौहर का अबल मुद्दाग हँसा।  
हँस पड़े सत्य के नियम कठिन,  
सब राजपाट का त्याग हँसा ॥

युग का सोया बुन्देलखण्ड  
विहँसा स्वर्णिम उपहार लिए।  
मानवता का ससार लिए,  
यीते युग का उद्गार लिए ॥

जननी पद पर मिटनेवाला  
रण धीर चले हथियार लिए।  
फण-फण से विक्रम फूट पड़ा  
रणचण्डी की हुकार लिए ॥

उर पर मुण्डों का हार लिए  
जग जरा मरण व्यापार लिए।  
हर हर शकर का गूँच लिए  
जलनिधि-सम जय नयकार लिए ॥

था केमरिया याना विहँसा  
घर घर का घन्दनधार हँसा।  
तोरण विहँसा, हँस उठा फलाश,  
मंगलमय जग व्यापार हँसा ॥

गो ब्राह्मण के रक्षक विहँस,  
घन घन घजत घड़ियाल हँसे।  
जीजीयाइ के लाल हँस,  
युग के जाग्रत करवाल हँसे ॥

हर हर-शकर, हर हर शकर  
भचकर घड़नेमाले विहँसे ।  
रण की गंगा पर सेतु बना  
धे सज चढनेमाले निहँसे ॥

मन का गति ने भी गतिमाले  
रग रग में नर हुकार लिए ।  
रणगीरों का ररदान लिए,  
नर-नर का जय पयकार लिए ॥

नस नस म शक्ति अपार लिए  
उर म स्वर्णिम मसार लिए ।  
वीता गाधा साकार लिए  
भावी युग का उद्गार लिए ॥

य चपल तुरग गढ़ से चलकर  
आग घड़कर हिनहिना उठे ।  
उन धीर घाँतुरे लालों के  
घरझा भाले मनमना उठे ॥

सौँह पड़की, यिचला चमकी  
सध महा अचल ढगमगा उठे ।  
रवि के रध के घोड़े नभ के  
पय पर रूकर सगयगा उठे ॥

यह मनु विहँस आगे-आगे  
घोड़ की याग सँभाल चली ।  
पीढ़े नानासाहय की भी  
धीरों सी नाहर चाल चली ॥



वे स्वतन्त्रता के वीर प्रती  
भायी भारत के लाल घले ।  
मुपमा मण्डित प्रासादों से  
हँसते बालक तत्काल घले ॥

घोड़े को रोक मनु योली  
“नाना साहब ! अब रुक जाओ ।  
लो रोक राय साहब ! माला  
आगे न बढ़ो तुम रुक जाओ ॥

देखूँगी किसका घाजि आज  
विजयी होता है चालों में ।  
पथ के उन्नत शिखरों पर  
बरछी, भाले, फर्यालों में ॥

मानसता की हुवारों में  
दानसता के सहारों में ।  
निमसता का पुफसारों म  
अरि दल के तीरे घारों में ॥’

यह कहत हुए मनु ने तय  
अपने हय को सरपट छोड़ा ।  
नल के कौशल को लज्जित कर  
घन गया पवन का वह जोड़ा ॥

पलनों के गिरत-गिरत ही  
विजयी घोड़ा दिनहिना उठा ।  
विफराल काल की निहा सम  
कटि का फटार टिमटिमा उठा ॥

था कुरुक्षेत्र फुफकार उठा  
हुकार लिए रणवीरों का।  
नभ के प्रागण में गरज उठा  
जयघोष समर कृत वीरों का ॥

यह दंग मनु की फला नवल  
नभ में थी चपला धमक उठी।  
पाँहें फड़कीं, माता विहँस,  
अन्तक की छाती धडक उठी ॥

वह पुन विहँसकर बोल उठी-  
“नाना! घोड़ा तैयार करो।  
विचलित मत होना निज पथ से  
पसकर धल्ला का भार धरो ॥

घोड़े को एड़ लगाओ श्रव  
या फर दो मरी हार हुई।”  
थी मनु लाड़िली के मुँह से  
पेमी निभय हुँकार हुई ॥

बालक नाना सुन कड़क उठा-  
“क्या है क्षत्रिय का धम यहा ?  
क्या वीर प्रसविनी माता के  
बच्चों का होगा कम यहा ?

युग युग मे रण मतवाने का  
यरा केतु गगन में फहराता।  
क्षत्रिय का पावन तज अभी  
वन जन मानस में लहराता ॥

खोए स्वयं की रक्षा ह,  
दीनों के धन की रक्षा हो।  
जो नस नस में है विचर रहा  
उस जाति-खदन की रक्षा हो ॥

मिहिनी सिंह को जब जनती  
घन घन तरु तरु थराता है।  
विक्राल काल से लड़ने को  
घड़ धार धार गुराता है ॥

घस धर, घुप रह, अश्वारोहण  
मैंने भी गुरु से सीखा ह।  
जिसका पावन साक्षी मेरे  
पर का यह भाला तीखा है ॥

हे धानि ! तुझे मारुत-गति को  
नीचा अथ दिखलाना होगा।  
अथ मनु लाड़िली के हय को  
गति से गति सिंगलाना होगा ॥

अम्यर को घहराना होगा,  
पयल को थराना होगा।  
मावा के मुख की लाला को  
घट्टे दिशि में फैलाना होगा ॥”

इतना फहकर नानासाहय  
जुट गण कला की धाजी पर।  
जैसे यसन्त उल्लास भरा  
जुट जाता है धनरापी पर ॥

हँस एह लगाकर घोड़े को,  
फिर किया सजग क्षण फाड़े को  
अपनी पैनी तलवार लिए  
शलकार अनिल के जोड़े को ॥

दो चार टाप देकर घाड़ा  
दो पैरों पर हो गया खड़ा।  
क्षण भमक दौड़ दो डग उमने  
अवनी पर निज पद दिया गड़ा ॥

बालक नाना भी डरा नहीं  
घोड़े पर डटकर अड़ा रहा।  
घाड़ा भी टस से मस न हुआ  
दो पैरों पर ही खड़ा रहा ॥

पद रखकर वह दिनहिना उठा,  
बल बक्र बाल चक्रपका उठा।  
नाना इस विकट परिस्थिति में  
भय-भस्त हुआ सकपका उठा ॥

कुछ बस न चला उस बालक का  
घोड़ा निज बश से बाहर था।  
अड़ियल था, पका टेढ़ा था,  
अपनी धुन का वह नाहर था ॥

था पड़ा पारव में शुष्क काठ  
तपती था भूमि हुतारान सी।  
गिर पड़े वसी पर नाना थे,  
ध्वनि गरजी शनु-शायसन सी ॥

सिर से शोणित बह चला त्वरित  
उस वीर युवक के घावों से ।  
चात्कार भयकर निकल पड़ी  
भावी भारत की चाहों से ॥

तत्काल गिराकर नाना को  
टपटप दौड़ा सरपट घोड़ा ।  
भय का न रहा उस पर शासन,  
सिर पर न सड़पता था कोड़ा ॥

इस करुण दशा पर मनु शीघ्र  
अपने घोड़े से उतर पड़ी ।  
नभ से नीली चादर ओढ़े  
साकार भवानी उतर पड़ी ॥

विहँसी ऐसे सक्लों पर,  
इन शक्तिहीन अभिमानों पर ।  
यातों के सेतु बनाकर ही  
यरा के इच्छुक मदानों पर ॥

“नाना साहब ! क्यों मोते हो,  
बलहीन, बने हो मदाने ।  
क्या इसी मुजा का बल लेकर  
ये चले गगन भू पर खाने ?”

नाना का सिर कर में लेकर  
छोड़ की धार तुरत रोकी ।  
जो विहँस रही थी अति मूर्खा  
स्मित से वह भी सत्वर रोकी ॥

“जागो, जागो हे मौनप्रती !  
अभिमान शान की रक्षा कर ।  
नर के मुखों की रक्षा कर,  
गौ के मुखों की रक्षा कर ॥

यह समय नहीं है साने का,  
हँस तन्द्रा का धधन ताड़ो ।  
रज में सोने का समय नहीं  
माया की सय ममता छोड़ो ॥

घोलो नाना ! तुम एक बार  
मानवता भी हँसकर बाल ।  
इस पराधीनता का धन्यन  
मरी तलवार बिहँस कर !”

कुछ क्षण ही म फिर हुआ चेत  
नीरवता का हो गया अन्त ।  
उल्लास भर गया कण-कण में  
हो उठा प्रफुलित दिग्दिगन्त ॥

यह दौर न क हूँ न  
क्षण वय-न न न न ।  
विजली कड़क कड़क,  
मटपट टु ट ट ट ट ट ट ट ।

“नाना साह्य ! अथ बाल, यथा,  
यह हार दुर या जीत रही ।  
जो शक्ति अभी बातों में थी  
वह सप्य दुर या शीत रही ॥”

नाना से कहती हुई मनु  
निज कर का अश्वलम्बन देती ।  
लोहू से लथपथ आनन को  
थी । पाछ - पोंछ सान्त्वन देती ॥

घावों से पीड़ित नाना की  
केवल पुतली ही फिरती थी ।  
कुन्तों के पौरुष-सागर पर  
आशा की तरणी तिरती थी ॥

अम्बर की क्रीड़ा बन्द हुई,  
धरणी की क्रीड़ा बन्द हुई ।  
फण फण की क्रीड़ा बन्द हुई,  
युवकों की क्रीड़ा बन्द हुई ।

चल पड़ा बाजि गढ़ ओर सुरत  
मारुत गति से गतिवाला था ।  
टापों से अरि सिर फोड़ - फोड़  
रण में लहरानेवाला था ॥

वह एक हाथ से नाना को  
गिरन से घैठ सँभाले थी ।  
सिर पर आकाश सँभाले थी,  
कर में वह घाग सँभाले थी ॥

पायन विदूर मुसकाता था,  
मधुमय - भविष्य मुसकाता था ।  
जन - जन की आशा से मिलकर  
सब धर्म-कर्म मुसकाता था ॥

नाना साहस का घाव देख  
सब लोग बहुत ही घबराए।  
मरहम पट्टी के लिये वैद्य  
क्षण में ही वहाँ चले आये ॥

पर घाव न उतना गहरा था  
केवल चिन्ता का कारण था।  
मानस की दृष्टि विकलता का  
बह बना हुआ केवल घण था ॥

जब मरू रात्रि को भोजन कर  
निज कक्ष मध्य जाकर सोई।  
तब राजभवन में भी न उघर  
आता या जाता था कोई ॥

घीरे से बोली "तात ! सुनो  
कुछ चोट लगी दादा को है।  
तिस पर इतने हैं लोग व्यग्र  
भारी चिन्ता दादा को है ॥

यह है क्षत्रिय का धर्म नहीं  
शाण्डित को लक्ष घबरा जाना।  
उसका तो यह धाना ही है  
निर्मय अन्तक से रह जाना ॥

अथयव अथयव भी कट जाए  
पर गरज गरज आगे बढ़ना।  
शत्रुओं से रिपु को मार मार  
जय मंत्र सतत पढ़त रहना ॥"



“घेटी ! नाना का घाव घड़ा  
दो अंगुल मात्र रहा होगा ।  
यह ज्ञात नहीं उसमें से ही  
अथ कितना रक्त घड़ा होगा ?”

“हे ताव ! सुनाते थे मुझको  
इतिहास पुराने वीरों का ।  
सागर को शोणित से भरकर  
न डूबनेवाले रणधीरो का ॥

हँसकर शोणित से पिचकारी  
भर फग खेलनेवालों का ।  
घोटी घोटी पर अरि दल का  
हँस धार रोकनेवालों का ॥

आख्यान सुनाया है गुरु ने  
पौरव नरेश के धारों का ।  
रण में लड़नेवाले उनके  
तन के उन अस्सी धारों का ॥

फिर भी छाता वस्तान रही  
धारों की थी परबाह नहीं ।  
उस धीर पुरुष के मुख से थी  
निकली रक्त भी आह नहीं ॥

हे ताव ! सोचते थे रण को  
क्या इन्द्रजाल का खेल अभी ?  
इससे न कभी फट सकती है  
अरि की घोंई विप-वेलि अभा ॥”

“सुन घात छधीली। नाना तो  
सोलह बत्सर का बालक है।  
यह अभी नहीं सह सकता है,  
वह नहीं घाव का पालक है ॥”

“जिस पार्थ-भुज की आप सदा  
थे मुझे सुनाते वीर कथा।  
यह सप्त महायुधियों का था  
कैसे सह पाया घात-व्यथा ॥

यह भी सोलह बत्सर का ही  
अपनी माता का प्यास था।  
कर चक्रव्यूह का खण्ड-खण्ड  
रिपु को उसने संहारा था ॥

जिसने सगर में अरि-दल को  
एकाकी लड़ना सिखा दिया।  
घड़कर नभ के मस्तक पर था  
गोरव का टीका लगा दिया ॥

भूतल के वीर सपूतों को  
सगर में मरना सिखा दिया।  
हंस कुरुक्षेत्र की वेदी पर  
नव प्राण-सुमन था चढ़ा दिया ॥”

“पर हे घेटी। वह समय नहीं  
धीते युग का वह घाना है।  
केवल उसकी कमनीय कथा  
सुन सुनकर समय बिताना है ॥”

“हे तात ! यही आकाश धरा  
 हम सबका भी है रूप वही ।  
 नभ में है अभी वही रवि-शशि  
 तारों का वेश अनूप वही ॥

हिमगिरि का अभी ललाट वही,  
 गंगा की पावन धार वही ।  
 यमुना का श्यामल रूप वही,  
 सगम का अतुलित प्यार वही ॥

कमला का पावन धाम वही,  
 जन-जन में रमता राम वही ।  
 ब्रज का ब्रज-मण्डल अभी वही  
 वृन्दावन सुन्दर धाम वही ॥

शक्र की है शिवपुरी वही,  
 कैलारा अचल है अचल वही ।  
 जन-जन के मुख में गूँज रहा  
 धम धम शक्र की भजन वही ॥

उस वीर शिवा की जन भूमि  
 शिवनेरी का है दुग वही ॥  
 है वही अभी हल्दीपाटी  
 चित्तौर दुर्ग है खड़ा वही ॥”

मुन धर पुत्री का गूढ़ प्ररन  
 हो उठे पिता भी शीघ्र विफल ।  
 उत्तर के लिये लगी बहने  
 “बतला दे तात ! मुझे प्रतिफल ॥”

यह देर सुता की आतुरता  
वे कहने लगे पुन हँसकर ।  
जिनके भय स भारत माता  
हत्ववुद्धि पड़ी करती थर थर ॥

“अब अँगरेजों के वैभव का  
है सूर्य गगन में चमक रहा ।  
जिससे हत होकर देश तेज  
भूतल में सोया दमक रहा ॥”

कई उठी मनू “हे तात ! अभी  
यह भारतवर्ष हमारा है ।  
इस घसुघा पर कोई न सदा  
रग सकता जीवन धारा है ॥

जो बात आपने कही अभी  
वह कायर का उर कहता है ।  
वह हलनाहे का बैल बना  
गाली या मारें सहता है ॥

मानव ने हिमगिरि को लाया,  
जलनिधि को गण्डुलि पर पीया ।  
अन्तक की छाती कँपा-बँपा  
अवनी पर युग-युग तक जीया ॥”

“चय और बढ़ी होगी घेटी ।  
इसका तुमको अनुभव होगा ।  
संसार कहीं है, कैसा है,  
यद शान तभी सम्भव होगा ॥”

"मैं डरनेवाली नहीं तात ।  
 विघ्नों के तम अगारों से ।  
 यह सिर न कभी मुक सकता है  
 बंदी के तीरे वारों से ॥

वह कहाँ गया उपदेश सबल  
 जो आप मुझे सिखलाते थे ?  
 अब कहाँ गया वह सती-चित्र  
 जो आप मुझे दिखलाते थे ?

कहते थे धर्यावती धनना  
 अरि गण के अत्याचारों में ।  
 कहते ताराबाई धनना  
 रिपु दल की विकट कटारों में ॥

हाड़ारानी सम हाड़ हाड़  
 माँ अचल पर विखरा देना ।  
 अरि कर का तन पर स्पर्श न हो,  
 यह पाठ न तुम धिसरा देना ॥

माता सीता धनकर भू पर  
 निज सत्य धर्म सिखला देना ।  
 पानन गीता धनकर जग म  
 नव सत्य पन्थ दिखला देना ॥

जीजाथाइ सम अयनी पर  
 निज कीर्ति ध्वजा पहरा देना ।  
 दुरमन के सिर का मुण्ड-माल  
 शङ्कर को विहँस चढ़ा देना ॥

उत्तर देने में हुए मौन  
क्षण मोरोपन्त छधीली का ।  
इस वाक्य-युद्ध में हुई विजय  
निशि में उस सद्गविली का ॥

इसलिए मनु से अधिक रात  
गत होने की ही बात कही ।  
यह गूढ़ समस्या रजनी के  
तम अचल म ही पड़ी रही ॥

सो गई मनु, पर सो न सक  
थे पन्त समय की उलमल में ।  
आगे की विकट समस्या भी  
आती न रही कुछ सुलभन में ॥

ये सोच रहे थे—'मनु आज  
वय से आगे है मुसफाती ।  
उसका विवाह करन की है  
यह शुद्ध अवस्था बतलाती ॥

पर वर वरतर न मिला को  
या भारत-भू के अचल पर ।  
आशा मुसफाकर सो जाती  
धी तरु के पुलकित-दल-दल पर ॥

यह बात सोचते हुए पन्त  
सो गए निशा के अचल पर ।  
गड़ गया स्वप्न का विजय केतु  
घतना भूमि के हत्तल पर ॥



सोन के रश्मि-हिडोले पर  
जाभर जो मूला करती थी।  
जिसकी छवि का आलोक निररत  
नव फलियाँ फूला करती थीं ॥

कोयल पंचम स्वर में जिसके  
स्वर का यश गान सुनाती थी।  
शफरी जिसके चल नयनों की  
चंचलता फुदक घटाती थी ॥

जिसके निश्वासों का परिमल  
मलयानिल नित्य घटाता था।  
जिसके मुख छवि-सर में नित ही  
शशि किरणों सहित नर्शाता था ॥

हंस जिसके ललित कपोलों से  
लेता पाटल था नव लाली।  
जिसकी मधुमय स्मिति के रस से  
भर जाती सुमनों की प्याली ॥

जिसके कच की श्यामलता से  
कालिमा अमा भी लेती थी।  
निच-चन्द्र-शौंदनी-सा जिसका  
एक कोमल वन घेतो थी।



नूतन आभा नव किसलय से  
मिल मिलकर ज्यों मुसकाती है।  
रक्तिक पल्लव के अंचल में  
लज्जा से छिपती जाती है ॥

जैसे प्रियतम माधव से मिल  
कलियाँ सुख से मुसकाती हैं।  
पद पूजन में रजित रर फा  
दल-कर से गन्ध चढ़ाती हैं ॥

वैसे ही मनु लाइली भी  
पति पद सेधा दिखलावे प्रसु।  
अपने सुन्दर मन का इच्छित  
वर सुपद विश्व में पावे प्रसु ॥

यह कह कहकर पुर की मधुएँ  
जीवन की घड़ी बिताती थी।  
उनकी रर सरसी में प्रतिदिन  
वात्सल्य घीचि मुसकाती थी ॥

अब लगे खोपने योग्य पात्र  
श्री मोरोपन्त चतुर्दिशि में।  
चिन्ता के शासन में रनको  
निद्रान फमी आती निशि में ॥

वात्स्या दीक्षित से चली यात  
लाइली मनु के परिणय की।  
सुपमय—मविष्य के अंचल पर  
जगनबाने उस निणय की ॥

दीक्षित थे पुर-जन में कुलीन  
थे सर्वयोग्य वर क शाता ।  
पावन स्वधम के नम प्रतीक  
थे वयोवृद्ध - विद्यादाता ॥

मन में उस वृद्ध द्विजोत्तम ने  
जो जो सुयोग्य वर ठहराया ।  
वसका न मिल सका जन्म-पत्र  
इसलिए निरशा-न्तम छाया ॥

सहसा दीक्षित को हुआ स्मरण  
भाँसी के नृप गगाधर का ।  
सर्वज्ञ, कुलीन, सुयोग्य धली  
सुन्दर, हृद-सत्य-धनी वर का ॥

चल पड़े शीघ्र वे भाँसा को  
वर में नयीन उल्लास भरे ।  
नम में लहराते थे पय के  
सुन्दर गिरि-भस्त्रक हरे-हरे ॥

थी लड़ी यनाली ल माला  
यन रानी को पहनान को ।  
तरवर थे खड़े मधुर फल ले  
जनना को मुदित चढ़ान को ॥

फल-फल ध्वनि में निभर प्रतिपल  
यनमाला का गुण गाता था ।  
पय के दूरागत पथिकों का  
सन-ताप मिटाता जाता था ॥

मद-मस्त मयूर मगन होकर  
नित नृत्य-कला दिखलाते थे।  
जल-पूरित विमल सरोवर में  
अलिगण गुन, गुन, गुन गाते थे ॥

नव रम्य-सुखद-पथ पर मुककर  
तरुवर नव व्यजन सुलाते थे।  
मन अनायास था रमा हुआ  
दीक्षित जी घड़ते जाते थे ॥

पुलकित तन था, प्रमुदित मन था,  
मानस में था उल्लास भरा।  
अभिलाष धीज के उगने से  
नव भाव क्षेत्र था दूर भरा ॥

वे पहुँच गए मॉसी प्रदेश  
मानवी कला से न्यारा था।  
था प्रकृति अंक में खेल रहा  
बह रानी का अति प्यारा था ॥

मॉसी की राज समा सज्जित  
बैठे नृप थे सिंहासन पर।  
सामन्त, पारिपद, सेनानी  
बैठे थे निज-निज आसन पर ॥

मणि-रत्नों की उजियाली में  
पमपम वह समा पमकती था।  
मौ सौ दिनकर सम तेनमयी  
राजा की कान्ति दमकती थी ॥

दीक्षित जी का था बड़ा मान  
राजा के सुखमय शासन में।  
वे थे श्रद्धा की सौम्य मूर्ति  
विश्वास बना था जन-जन में ॥

तब सभा विर्वाजित होने पर  
मारुत गण घीरे से डोले।  
एकान्त स्थान में दीक्षित जी  
साहस करके नृप से बाले ॥

‘प्रभुवर ! है केवल एक विनय  
आज्ञा हो तो मैं अभी कहूँ।  
यदि समय न हो सुनने का तो  
प्रभु ! क्षमा करें, मैं मौन रहूँ ॥’

यह बात अटपटी सुनते ही  
भूपति घीरे से विहँस पड़े।  
दीक्षित जी की उर-सरसी के  
अभिलाष-कमल सब विहँस पड़े ॥

कामल बाणी में नृप बोले  
“जो कहना है कह सकते हैं।  
यदि कोई गूढ़ समस्या हो  
तो उसको भी गह सकते हैं ॥’

यह देख मुश्किलर उस दिन ने  
श्रुत राजा का आख्यान फहा।  
जिसको सुनते ही भूपति न  
उस पर वह पिछला पाव सहा ॥

पर सोच नहीं है अब प्रसुषर ।  
 कुछ बश न किसी का बलता है ।  
 सुख-दुख क पलने पर मानव  
 जीवन में पलसा रहता है ॥

माँसी की जनता रानी के  
 आगम का भावन करती है ।  
 अपने उर में राजा के हित  
 यह पुत्र - कामना भरती है ॥

दीक्षित जी की इन बातों पर  
 भूपति भी आशा पट खोले ।  
 ले जन्म पत्र निज हाथों में  
 गम्भीर भाव में वे धोले ॥

“इस मेरी पत्नी में इतना  
 तेजस्वी प्रह मुसकाता है ।  
 जिससे न किसी से मिल पाती  
 नव - विघ्न जलद लहराता है ॥”

सुनकर राजा की बात शीघ्र  
 द्विज ने कर में यह पत्र लिया ।  
 मिल गया मनु से जन्म पत्र  
 नृप को गुरु न वह पत्र दिया ॥

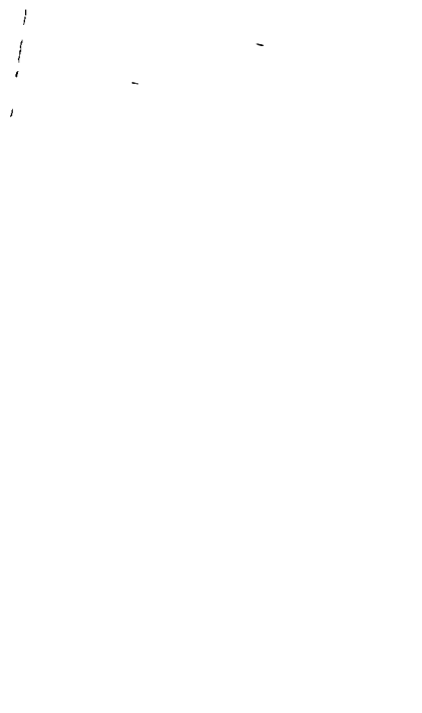
खिल गया भक्ति नृप का मानस  
 तन रोम - रोम भी मुसकाया ।  
 मायी रानी का ध्यान गुरु  
 नृप के उर में आ लहराया ॥

तब मनु वंश की पुण्य कथा  
सुन गए द्विजोत्तम से सुख से ।  
सुनकर कन्या की रूप कथा  
कुछ कह न सके गद्गद् मुख से ॥

हो गया मनु से व्याह ठीक  
माँसा के नृप गंगाधर का ।  
सर्वज्ञ, कुलीन, सुयोग्य, बली  
सुंदर दृढ़, सत्य धनी धर का ॥

दीक्षित जो ने आकर विष्टर  
यह मुदित नया सम्वाद कहा ।  
श्री बाजीराव पन्त ने भी  
जिसको हँमकर स्वीकार किया ॥

हो गया प्रथम ही यह निर्णय,  
माँसा में ही होगा विवाह ।  
यह मनु बनेगी पटरानी  
माँसा के गढ़ की स उत्साह ॥



चौथी हुंकार



1/

1

प्रकृति उठ, सुर से आँखें खोल  
देखने लगी सकल संसार ।  
धरा पहने थी नीलम हार  
जगत का था सुप्रमय व्यापार ॥

सरो म जगकर खलिल-विलास  
खेलने लगे पवन से खेल ।  
खुल गया जग में सुख-भण्डार  
प्रमा का हुआ छटा से मेल ॥

पराजित घोर तमिस्रा मौन  
लगी लेने गिरि गढ़र-धौंड़ ।  
यतान लगी अमन्द सुगन्ध  
मधुप को मधु से सींची राह ॥

खुल गया प्राची का प्रासाद  
विहँसने लगे हेममय - द्वार ।  
दमकने लगा छटा के साथ  
उषा के उर का अरुणिम - हार ॥

मँभाले एक हाथ से हार  
दूसरे से लज्जा का भार ।  
सही नम पनघट पर साधार  
देवता था उसको ससार ॥

खींचती सखी दिशाएँ मौन  
पकड़कर स्वर्ण डोर की छोर ।  
निकलने लगा स्वर्णमय फलश  
हुआ जग हृद्य में आत्म विभोर ॥

भरा था जिसम जीवन सार,  
प्रभा रखवाली करती घूम ।  
घरा भी स्वयं धनी थी धन्य,  
गगन पर थी उत्सव की घूम ॥

उपा ने कोमल कर से खींच  
उसे हँस जग में दिया उड़ेल ।  
पानकर जिसकी विरय महान्  
खेलने लगा प्रभा से खेल ॥

विहँसन लगी प्रकृति तत्काल,  
खिल गए भौंति भौंति के फूल ।  
मगन था गगन, प्रफुल्लित भूति,  
प्रभामय अम्यर-जल थल फूल ॥

घूमने लगा मस्त मधुमास  
घरा पर सुख से चारों ओर ।  
कच्ची पर हाँते रग के गान,  
कहीं पर नाच रहे मोर ॥

जगाने लगा प्यार के साथ  
अभी जो सोए थे नय फूल ।  
घरा पर माधव का सन्देश  
गए थे अममय में जो भूल ॥

धरा धी मुख में आत्म विभोर,  
नहीं था कहीं द्वेष अपमान ।  
देवगण स्वर्गलोक में बैठ  
गा रहे थे निसका यश-गान ॥

जहाँ के विमल अक में नित्य  
गूँत थे वीरों के नाद ।  
धमकता हथियारों से पूर्ण,  
यही है माँसी का प्रासाद ॥

पहाड़ी विपम भूमि पर दुर्ग  
घना है परकोटा चहुँ ओर ।  
मधुर फलकल निर्भर का शब्द  
घना रहता निशि दिन चित-चोर ॥

गगनचुम्बी - भवनों के केतु  
चढ़ रहे थे अविरल - अविराम ।  
अमण का हरकर थे प्रस्वद  
व्यजन भलकर देते विश्राम ॥

मेघ मालाओं का कर स्पर्श  
धवल - प्रासादों का कल-करुठ,  
जान पड़ता था एसा दिव्य  
शम्भु-तन पर हो नीला - करुठ ॥

धवल नगरी, कद्वान प्राकार  
अमर-गिरि-सम लगत सुगम-स्नान ।  
अमरपुर मानो करके मान  
लगाए हो अपनी पर ध्यान ॥

भवन की धवल पताका नित्य  
खेलती थी नभ में अविराम।  
कहीं यह कौशिक द्वारा त्यक्त  
व्योम-गगा ही है छविघाम ॥

बँधे थे जिसके चारों ओर  
सुखद नव सुन्दर बन्दनधार।  
राजती जिसमें आठों सिद्धि  
श्रद्धि का पावन पारावार ॥

निपुण रमणी ले अक्षत धाल  
रँग रही थी हल्दी के साथ।  
दूसरी रचती परिणय चौक  
मुदित नव रुचिर फला के साथ ॥

तने थे पथ म सुखद वितान  
वस्त्र फूलों के चारों ओर।  
मानकर जिनको पुष्प मिलिन्द  
महक में होते आत्म विभोर ॥

गड़े थे सिंह पीर पर दिव्य  
रुचिर बदली के नूतन रम्भ।  
हर रहे थे प्रतिपल सविनोद  
रमणियों के वर के सय दम्भ ॥

बँधा था उस पर पट के साथ  
सुखद हारे-मणियों का हार।  
विहँसता गढ़ के चारों ओर  
नयल सुपमा का पारावार ॥

द्वार पर शहनाई का शब्द  
पवन का भी बनता चित-चोर।  
नाचता रहता था सविनोद  
चराचर का निशा-दिन मन-भोर ॥

बचा था अथ तफ संकट भेत्त  
जाति का यदि गौरव-अनिमान,  
पूजों के पौरुष का गान,  
अमरता का पावन धरदान,

विरव में जो है अभी महान्  
घरा पर धर्म कर्म का सान।  
मृत्यु कर जोड़े रहती नित्य  
देखकर तिनका अनुपम रात्र,

वही है इस भारत का प्राण  
पड़ा है तिसका माँसी नाम।  
गद्दी है तिस पर अरि की आँख  
वही है भारत का छवि धाम ॥

बमकना रहता बमबम मुकुट  
जहाँ मुकत भूपों के शीरा।  
जाति का गौरव, शौर्य महान्  
मुदित हो इते प आशीष ॥

राज्य था भू पर सुगन्ध अनूप,  
देवन का रहता था धाय।  
पहराता था तिसका यरा केतु  
नाम था भी गगाधर राव ॥

राज्य में नहीं कहीं पङ्कज  
प्रजा में नहीं व्याप्त या शोक ।  
सुना सकते सब मन की बात  
नहीं था राज भवन में रोक ॥

न्याय में होता शुद्ध विचार  
नहीं था कहीं कपट व्यवहार ।  
दीन दुखियों को मिलता दान,  
अतिथि पाते समुचित सत्कार ॥

सामने कुरुक्षेत्र था दिव्य  
सुशोभित थे रथ पर भगवान ।  
मोह में पड़े पार्थ को कृष्ण  
दे रहे थे गीता का ज्ञान ॥

दुष्ट दुःशासन का दुष्कृत्य  
द्रौपदी परती हाहाकार ।  
यदाते थे माघव छिप चार  
हो रहा था पट पारावार ॥

मुखद तापस बाला का नित्र  
टंगा था एक द्वार की ओर ।  
वीड़ते हरिण मुण्ड के मुण्ड  
खिचरते फीर, पपीहे, मोर ॥

इसी नव शुभ मुहूर्त में शीघ्र  
मनु आ गई पिता के साथ ।  
देस मारी साम्राज्ञी रूप  
हो गई भौंसा भूमि सनाथ ॥

लगीं धालाएँ करने शीघ्र  
विवाहोचित नव ललनाचार ।  
लगा होने वैदिक-विधि सिद्ध  
रुचिर - वैवाहिक - शुभ-व्यवहार ॥

हुए नर-नारी सभी प्रसन्न  
देस रानी का सुन्दर रूप ।  
त्यागकर ब्रह्म-यत्ना ही स्वर्ग,  
अवनि पर आई मूर्ति अनूप ॥

भगन था गगन, धरा थी धन्य,  
प्रभाती गाने लगा विहान ।  
मनू के कमलानन पर दिव्य  
चमककर जागा सेंदुर दान ॥

गूँजने लगा वेद का मंत्र  
सनायाओं ने गाया गीत ।  
सुरोमित थे आसन पर भूप  
राजता तन पर नव उपवीत ॥

पाठकगण भूल न जायेंगे  
हो गई मनू लक्ष्मीबाइ ।  
जिसने भारत की शक्ति-ध्वजा  
नभ-मस्तक पर थी फहराई ॥





**पाँचवीं हुंकार**



प्रभाती गाता विहग-समाज  
जगत् में है सुपमा का राज ।  
कर रहे जड़-चेतन निज अज  
घरा पर धन्य शान्ति का साज ॥

बोलते कहीं पपीहे मोर,  
कहीं होती वादुरध्वनि घोर ।  
कहाँ है छिपा अरे ! चित्त-घोर  
यना देता जो आत्म - विभोर ॥

देखती हूँ मैं नूतन बात  
दियस का मुख लगलों है म्लान ।  
हमारे वीरोचित अभिमान  
मुझे ही लगते हैं अनजान ॥

नहीं इस भव्य भवन के धीष  
हुआ है निसका यह शृंगार,  
बैठकर कर सकती सपकार  
या कि इस भारत का एकांग ॥

भोग का है यह मेरा सान,  
छूटता जाता पौरुष-सग ।  
नदी या सफती सपल - सुरग  
बरजते ये मेंहदी के रग ॥

मिला था जो नभ से वरदान  
विहँसती थी जिस तन पर धूल,  
कर रही हूँ उसका अपमान  
राजते आज उसी पर फूल ॥

घेरते नभ को कले मेघ  
जगत् में आया हो मूढोल ।  
और मैं बैठ सुखों के बीच  
धोलती रहूँ काकली धोल ॥

धरा पर हो पतम्भ का राज  
भूमि का लुटवा ही नभ साज ।  
और मैं बैठ दासियों बीच  
सजाऊँ अपना नूतन साज ?

धुले महनों का अरुण मुद्गाग  
मचा हो भूतल पर चीत्कार ।  
नित्य मैं खेळूँ हँस-हँस पाग  
और यह लूटूँ व्यजन महार ॥

सोचकर रानी हुई अघीर  
फड़फड़ने लगी अचानक बाँह ।  
फाँपने लगा समस्त शरीर  
जगी नभ अक्षि-धारण की चाह ॥

। धनरा थी, सँपी हुई थी आप,  
विहँसता नस नस में उत्साह ।  
हृदय पर छाया था सन्ताप,  
सोचती पति आशा निवाह ॥

विषय भी यह करने से कम  
भलक आया नयनों में नीर।  
धर्म का हाता दुस्तर बन्ध  
सोचकर रानी हुई अघीर ॥

यही चिन्ता थी घर में व्याप्त  
शान्ति में दूबा था रनिवास।  
महल का कण-कण करता नित्य  
महारानी पर यह उपहास ॥

इसी क्षण वहाँ दासियाँ तीन  
आ गई कर जोड़े तत्काल।  
देख आँसों में आया नीर  
हो उठी वे अयाक् उस काल ॥

देख रानी ने उनको शीघ्र  
चौंकर किया अश्रु-जल दूर।  
विहंसने लगी बैठकर स्वस्थ  
द्विपाती हुई हृदय का पीर।

पूछने लगी त्वरित ये हाल  
“कहाँ है तुम लोगों का घाम ?  
यहा पर आइ हो किस हेतु  
और क्या तुम सीनों का नाम ?”

यही है हम लोगों का घाम  
आपकी दासी हैं सिर-ताज।  
यही है हम लोगों का कम  
भरती रहें आपका साज ॥

आपकी सेवा अपना धर्म  
यही है स्वर्ग यही अपवर्ग।  
यही है हम लोगों का लक्ष्य  
इसी पर है जीवन उत्सर्ग ॥

दासियों की सुनकर यह बात  
जगा रानी में नभ उत्साह।  
पूछने लगी प्रश्न ये शीघ्र  
बिहँस कर लेती उनकी याद ॥

“कभी क्या बल्ला ले निज हाथ,  
तपाईं फोमल तन को आग ?  
दिखाया है स्वदेश को प्यार,  
कभी देखा है सगर भाग ?

सुनी हैं वीरों की जयधर ?  
सही है तलवारों की मार ?  
कभी घोड़े पर हो आरुढ़  
बलाई है धमधम तलवार ?

कभी की है मुद्गर से भेंट ?  
किया है लक्ष्य भेद शर फेंक ?  
सहा है कभी पाव पर पाव ?  
निषाही है मरने तक टेक ?

कभी मलमलम अस्त्रादे पीच  
दिखाया है तुमने पुरुपाय ?  
कभी लसनाओं का शुभ-धेय  
बिहँस तूने है किया छुनाय ?”

महारानी का सुन यह प्रश्न  
दासियाँ बैठी थीं चुपचाप।  
प्रश्न के उत्तर में चुपचाप  
रहीं थीं धीरे धीरे काँप ॥

व्यग से बोली रानी शीघ्र  
“जानती नृत्य, वाद्य या गान ?  
सजाकर रंग भवन का सान  
फिया है दर्शक का सम्मान ?”

प्रश्न यह सुनते ही तत्काल  
दासियों में छाया नभ हर्ष।  
जगा उन सभके तन में नव्य  
अभी तक का सोया उत्कर्ष ॥

हो गई रानी आगे मौन  
सोचने लगी समय का फेर।  
जगा अपना नारी इतिहास  
लिया क्षण में मानस को घेर ॥

प्रभो ! कैसे होगा उद्धार  
बचेगी कैसे अपनी लाज ?  
दखती हूँ मैं आँरों रोज  
धना नारी का है यह साज ॥

मिटेंगी कणवती की धान,  
धुनेगा पन्ना का सम्मान।  
धन्य नारी के गौरव मान,  
द्विपा रहा बीपेचित अभिमान ॥-



यही दुष्यन्त प्रिया का घाम  
गूँजता कण-कण में यह नाम ।  
यहीं पर पांचाली की साज  
बचा पाए छिपकर घनश्याम ॥

भजूँगी इन सतियों का नाम,  
पढ़ूँगी कर्मयोग का पाठ ।  
यना दूँगी इस तन का राख  
सजाऊँगी स्वदेश का ठाट ॥

जगाऊँगा फिर नारी जाति  
करूँगी सेना को तैयार ।  
बदाकर मुण्डों का नष हार  
करूँगी माता का शृंगार ॥

भले ही हो दु सों का घात  
किन्तु नस-नस में फहरे केतु ।  
बदाऊँगी अरि हर का रक्त  
यना नारी सेना का सेतु ॥

भले ही हूँसे गगन मुँह मोह  
समझकर यह फोर अभिमान ।  
बदाकर बलि वेदी पर शीश  
करूँगी मातृ - भूमि का मान ॥

यही है गगन, यही है भूमि  
हिमालय यही, विमल पैलास,  
यही है रवि-शशि का भी रूप  
यही निशि दिन का सरस-बिलास ॥

जगाया जा सकता है आज  
पुन सतियों का पावन-त्याग ।  
लगाई जा सकती है आज  
पुन पतितों के उर म आग ॥

धनाकर मातृ-भूमि को मुक्त  
क्रिया जा सकता है सत्यान ।  
सड़ाया जा सकता है दिव्य  
अन्य देशों में अरुण निशान ॥

शान्त हो गया हृदय विज्ञोभ  
पुन टूटा रानी का ध्यान ।  
सुनाने लगी पुन वे शीघ्र  
हृदय का अपना लक्ष्य महान ॥

बदेगा जिससे जग के बीच  
पुन इस भरत-रण्ड का मान ।  
मिलेगा जन जन को निष स्वत्व  
विहँस आयेगा सुरसद-विहान ॥

किंवरी नहीं, बनेगी सत्य,  
सजाआ फामल तन पर धर्म ।  
धरा का भार मिटाओ शीघ्र,  
फरो धारों सा दुस्तर-रुम

सिन्धाऊँगी सपद्यो तलवार,  
बनोगी सय अति कुशल सवार  
देमकर तुम लोगो का वार  
मचेगा अरि दल में पीत्यार ॥

सजाए हैं जिस तन पर फूल  
सजाएगा अब उसे निपग।  
घलेंगे भाले, धरळी, तीर  
कटेंगे रिपु दल के सब अंग ॥

सजा जो है सुन्दर रनिवास  
जहाँ करता है विभव निवास,  
वहाँ अब होगा शस्त्रागार  
इसी से होगा नवल विकास ॥

शपथ खाओ छोड़ोनी राग,  
शपथ खाओ कर दागी त्याग।  
शपथ लो अर्पित कर निज प्राण  
जगाओगी इस मू का भाग।”

दासियाँ सुन्दर ऐसी बात  
हो गई क्षण में शक्ति समान।  
गूँजने लगा हृदय में शीघ्र  
जाति गौरव का सोया गान ॥

जगा अपना सोया अभिमान  
जगा दर में समाज उत्थान  
जगी युग युग की महती आन,  
जगा सतियों का जीवन दान ॥

त्वरित फिरियों की हुंकार  
लगाने लगी सुप्त - रनिवास।  
शान्त हो गया कर्म - उपहास,  
विहसने लगा धर्म मधुमास ॥

शपथ है घर के बन्दनवार,  
शपथ है पति का अतुलित प्यार ।  
शपथ है पतिगृह के नव हार  
कहूँगी माता का उद्धार ॥

शपथ है मण्डप के कल-गान,  
शपथ पुर-जन के फन्या-दान ।  
शपथ जीवन के मधुमय फाग,  
शपथ माँगों के अरुण विधान ॥

शपथ है तन के नव शृंगार,  
शपथ मेंहदी के सुन्दर रंग ।  
शपथ तन पर के भूषण-भार  
शपथ प्रियतम का अथ से सग ॥

शपथ है जीवन में मधुमास,  
शपथ जीवन में व्यजन-बहार ।  
शपथ वैभव का है उपभाग  
कहूँगी माता का उद्धार ॥

बनेगा अभी योगिनी वेप  
मुनूँगी गीता का उपदेश ।  
मिटेंगा जय जन-जन का क्लेश  
तमा जाऊँगी प्रियतम - देश ॥

सगरी सुन्दर की मुन ललकार,  
मुना जय फारी का अभिमान ।  
सखी सुन्दर की मुन हुंकार  
गँवने लगा बिजय का गान ॥

सुनी जब रानी ने हुकार  
दासियों का ऐसा सकल्प ।  
सफल होगा लख निज उपदेश  
मिटा रानी का सफल विकल्प ॥

लगा होने कुछ दिन पश्चात्  
महापत्नी का रण उपदेश ।  
गरजने लगा त्वरित गढ़-भीच  
विपुल नारी सेना का वेप ॥

जहाँ अब तक था हास-विलास  
वहाँ अब गूँज उठी हुंकार ।  
जहाँ था पायल का कल-नाद  
वहाँ मल मल करते हथियार ॥

जहाँ था चमक रहा मुजबन्ध  
राजने लगा वहाँ अब चर्म ।  
चमकता रहा जहाँ कौरोय  
वहाँ हो गया वम ही वर्म ॥

**दादीं हुंकार**



निशा सुन्दरी शान्ति सग्री के  
साथ पर रही था शृङ्गार ।  
श्याम घदन को जन दर्पण म  
देय रही थी धारम्भार ॥

गूँथ रहा नव कुन्तल म थी  
उडुगण कुसुम नवल सुकुमार ।  
सना रही थी वह फनरी में  
लफर नभ गगा का हार ॥

घमक रहा कौशेय वस्त्र सा  
विमल-घट्ट किरणों का तार ।  
घरस रहा था मृदुल-स्मित से  
शिशिर-मुधा का मधु मनुहार ॥

रफ-रफकर यह प्रिय हिमागु थी  
देखा करती था नर राह ।  
कभी मधुर फलारष में गाती  
जलधि धाधि म अपनी चाह ॥

उधर विमल प्राची से आता  
पड़ा दिग्गह शशि मुग्न लान ।  
मुग्ध ज्यत्न्ना शशि मानम मं  
रही नय मुधा स्मित से घोज ॥  
नौ०/९



पर न हँसी आती थी मुख से  
बदन हो गया था कुछ लाल ।  
घसा रहा था गहरी चिन्ता  
रस में विपन्ना यह उस काल ॥

पग न पड़ रहा था सीधे से  
खिंची आ रही चिन्ता रेखा ।  
हुई विकल रजनी प्रियतम का  
कुँमलाया सा आनन देख ॥

रंगभवन भी सजा हुआ था  
फैलाता था मुक्का-हात ।  
रानी के सन के आभूषण  
दिखा रहे थे नवल सजास ॥

फरके नव शृङ्गार नृपति की  
रही देखती सुखमय राह ।  
कत्र प्रियतम इस छवि को देखे  
विकल कर रही थी यह चाह ॥

इसी बीच कुछ अनमन मन से  
आ पहुँचे भूपति उत्काल ।  
चिन्ता की रेखा थी मुँह पर  
आँसुओं के डोरे थे लाल ॥

प्रियतम ने सोचा, रानी के  
सन्मुख्य प्रकट न हो यह भाव ।  
एक प्राण था दो कथा में  
आ न सध इसलिये दुराव ॥

रानी बोली निज बल्लम स  
“यह कैसी चिन्ता की रेख ?  
अथतक तो सपने में भी मैं  
ऐसा नहीं सकी थी देख ॥

आज न पहले से मुसकात  
वे मानस के कोमल भाव ।  
आज न लहराते हैं चंचल  
रूप कुसुम पर व नव धाव ॥”

मन का भाव छिपाकर राजा  
लगे विहँसने फिर तत्काल ।  
हँसी हँसी में ही धावों का  
लगा फैलने माया जाल ॥

नृप बोले “हे प्रिये । सदा ही  
फरती हो धरिों की धात ।  
सरियों को छोड़े पर चढ़ना  
मुन्हों सिराती हो दिन-रात ॥

पटा, धनेठी, अस्त्र चलाना  
छोड़े पर होना ॥ आरुढ़ ।  
प्रतिपल सिरलाती रहती हो  
अधि की सब विचारें गूढ़ ॥

ऐसी शिखा पाकर जग में  
क्या कर सकती वे उपयोग ?  
इन्को तो पति गृह में रहकर  
करना है मुरा का उपयोग ॥

- - - घर में हा है पढ़ते इनको  
 - करने नित्य अनेकों काम ।  
 - गृहिणी बनकर, शिशु पालन कर  
 - देती हैं पति को विश्राम ॥”

प्रियतम की ये बातें सुनकर  
 रानी मुसफाई तत्काल ।  
 व्यग भाव से लगी सुनाने  
 कायर मानव की मति चाक्ष ॥

५५

“राजपूत धारों के रहते  
 ललनाओं ने ली तलवार ।  
 शीश चढ़ाकर उनसे पहले  
 गई स्वयं को विहँस सिंघार ॥

रूपगढ़ की राजसुता का  
 अय भी हँसता सुन्दर देश ।  
 नीच पिता था चला बेचने  
 जिसकी सज्जा का शुभ वेप ॥

रजत रण्ड के लिए यवन को  
 कन्या देनी की स्वीकार ।  
 ऐसे पिता और माता को  
 अयनी-सल पर है धिक्कार ॥

इसी जाति ने राज-मान या  
 नृप से पाने को सत्कार ।  
 अपनी माँ-बहनों से हँस-हँस  
 सजा दिया. मीनायाजार ॥ —

तब ललनाओं के गौरव की  
तरणी की काँपी पतवार ।  
कर्णवती ने तभी उठाई  
अपनी प्यासी विकट कटार ॥

जिस नृप के सम्मुख मुक्ते थे  
राजाओं के शीश अपार ।  
कर्णवती उसकी धाती पर  
घड़ी गरजकर लिए कटार ॥

चूड़ावत ने क्षत्रिय होकर  
पाया फायरता का गात ।  
घार घार शका की करता  
हाइरानी से वह मात ॥

रानी ने जय देग लिया अब  
नहीं त्याग का है विश्वास ।  
और यहाँ प्रियतम संगर में  
जाने से हो रहे हतार ॥

लेफर कर में चमचम करती  
रक्त-रूपित अपनी तलवार ।  
प्रियतम की अंजलि में अर्पित  
फिया त्वरित निज शीश उतार ॥

इसीलिये मैं भी कहती हूँ  
सखियों को देकर तलवार ।  
कभी न नर बन सक पावेगा  
नापी-सज्जा की पतवार ॥

जब तक तुममें छद्म - रक्त है  
तब तक समझो निज सम्मान ।  
नारी के पौरुष पर आश्रित  
नारी का जीवन-उत्थान ॥

देखो ! नारी की लज्जा से  
नर ने ही खेला निव खेल ।  
और नित्य नाटकशाला में  
लज्जा रखते सभी सकेल ॥

देश भक्ति का मान दण्ड है  
ललनाओं की जीवित शक्ति ।  
ललनाओं की सुदृढ़ भक्ति ही  
विमल - देश की है शुभ - भक्ति ॥

अब तो सुख के पीछे मानव  
दे सज्जा है अपना पेश ।  
लेकर नरवर पैभव जग में  
सजा रहा है अपना घेप ॥

नरवर धन पर दिया गया है  
भाँसी का भी पंचम अंश ।  
तिससे अरि का यदता जाता  
इस भू पर है निशि-दिन यश ॥”

राधा भी विलमिला उठे मुन  
ध्वंग मरी रानी की धात ।  
कोपानल से घघक उठा वह  
नृप का रेशम-भूषित गाव ॥

किन्तु तभी वे शान्त हो गए  
छिपा रह गया तन का रोप ।  
रोम-रोम भी शान्त हो गया  
पर न हुआ उनको परितोष ॥

पुन विहँसकर भूपति घोले  
“प्रिया ! नहीं यह भय का हेतु ।  
पंचम अरा राज्य का मुझसे  
अरि से मैत्री का है सेतु ॥

अभी बहुत है राज्य बचा है ।  
कर लो यदि सुख से उपभोग ।  
जीवन की आवश्यकता का  
प्रसुदित होकर करो प्रयोग ॥

राज्य-अरा के देने से है  
मरे घर में भी आपात ।  
किन्तु दुटिल-भवितव्य प्रयत्न है  
यह न किसी के धरा की पात ॥”

आगे पात न वह सुन पायी  
लगी हृदय में गहरी चोट ।  
मानव होकर स्वामी भी हैं  
लेते कायरता की चोट ॥

पड़क उठे एण में रानी के  
कमल-बदन के कोमल पात ।  
घर-सागर में ऊमि जगी फिर  
इन बातों का सा आपात ॥

करके रानी क्षमा याचना  
कहने- लगी हृदय की घात।  
जिस हिम के आघातों से था  
जला जा रहा सर जलजात ॥

प्रभो! आपका किया शत्रु ने  
हँसकर जो यह है सम्मान,  
सोच रहे हैं इसी मान से  
होवेगा अपना सत्यान ?

यह तो गुड़ में विष के जैसा  
दिया गया घातक सम्मान।  
रिपु की नीति काम कर बैठी  
अप्य सहना होगा अपमान ॥

गगन हँस रहा, रोती अबनी,  
आप हुए कैसे अनजान।  
कभी नहीं अरि अनल साय में  
पा सकता तिनका सत्यान ॥

नृप की पुनः चेतना जागी  
तब कैसे अप्य हो सब काम ?  
निससे बंधन-कड़ियाँ टूटें,  
निज प्रदेरा का रहे मुनाम ॥”

प्रिय पति से यह सुनकर रानी  
कहने लगी विहँस तत्काल।  
“फेरे हाथ गरज मूर्खों पर  
फिर माइ के प्यारे लाल ॥

- जगे पुन केसरिया घाना,  
हय पर दीड़े कुशल सवार।  
युद्ध छेड़कर चमचम चमकें  
यरछी, भाले, तीर, कटार ॥

रनिवासों में रानी जागे  
तनकर अपना भोग-विलास।  
रग भवन के कत्त-कत्त में  
हो हथियारों का ही हस ॥

वे भी अपने कोमल कर को  
पर लें अय से वज्र समान।  
चला सकें वे शूर-वीर सा  
यरछी, भाले, तीर, कमान ॥

प्रभुवर! निद्रा तन जगने से  
हो सक्त अय है उत्थान।  
सत्य भाग पर ही चलन से  
होगा वीर देश सम्मान ॥”

धतरस में वे हय गण थे  
रहा निरा का उन्हें न ज्ञान।  
अन्तरिक्ष की अगणित आँवें  
होन लगी शीघ्र ही म्लान ॥

रग भवन से भूपति निकले  
शामदार पट कटि से खेल।  
द्वार भवन की निपुण सारिका  
छठी प्रजापति की जय बोल ॥



प्रणय-सरोवर में ऐसे ही  
हँसते थे नव रुधिर विलास।  
हृदय-मुकुल में सुधा मरी थी  
मिटती जाती थी सब प्यास ॥

विहँस रहा था कुश्चि प्रान्त में  
रानी का भाषी उत्थान।  
मार्गशीर्ष की लिए फौमुदी  
हुह प्रकट हृपद सन्तान ॥

दीन-दुखी को मिला भवन मे  
उत्सव में मनमाना दान।  
रान-पान या राग-रग से  
किया गया सबका सम्मान ॥

निरा पदनती रही विहँसकर  
दिन का मुखदायक परिधान।  
हँसता हुआ दिवस सबको था  
लगता पल, क्षण, घड़ी समान ॥

अरि जो बैठे थे भ्रँसी पर  
लगा लगाकर धँचक पात।  
पहुँचा उनके मर्मस्थल पर  
अन्तक सा गहरा आपात ॥

पाया यह सन्देह उन्होंने  
भ्रँसी का है जागा त्याग।  
उनके हँसते अभिलाषों को  
लागी जलाने की ही भाग ॥

**सातवीं हुंकार**



प्राची के स्वर्णिम अचल पर  
बालक रवि था खेल रहा।  
शान्ति-सुधा में विमल प्रभा वह  
विहँस-विहँस था घोल रहा ॥

सद-तरु के रचित मस्तक पर  
स्वग-कुल बैठा घोल रहा।  
मधु से सिक्त सघन वन-वन में  
मलयनायु था डोल रहा ॥

प्रकृति धधू थी हरित-वसन पर  
स्वर्णिम चादर ओढ़ रही।  
ज्योति गगन-अवनी-तल का थी  
धनक-तन्तु से जोड़ रही ॥

कमल-क्षोप में वन्द सृङ्गण  
सुलते ही जगद्वर निकले।  
धूलि-धूसरित गुनगुन गाते  
निज दृष्टों की ओर घने ॥

धिरक उठी जल-तल पर लहरें  
विहँस पुलिन की ओर चलीं।  
भानु रश्मियाँ धाप्य-धारि का  
सत्वर सगति बटोर चलीं ॥

खेल रहा था नहाँ सा शिशु  
विमल प्रभा थी मुसफाती।  
धातयन से कनकरिम भी  
आकर नित थी दुलराती ॥

रानी कभी उठाकर शिशु को  
कन्धे पर थी बैठाती।  
कभी मुलाकर पलने पर वह  
धुम्यन ले लेकर गाती ॥

चुटकी बजा-बजाकर कहती  
“लाल ! बड़े हो जाओ तुम।  
वीर शिवा, राणा प्रताप सा  
कमंक्षेत्र अपनाओ तुम ॥

पार्य-मुत्र से होकर प्यारे।  
नित्य अनीति मिटाओ तुम।  
माता का शृङ्गार पुन हे  
लाल ! प्रसन्न सनाओ तुम ॥

धरद्री, भाले, वीर, कटारा  
फिर ले विहँस जगाओ तुम।  
लाल ! धरा पर पूषकाल सा  
गौरव गान सुनाओ तुम ॥”

यही गीत गा गाकर रानी  
शिशु को पुन उठाती थी।  
भाँषल से ढँक, दूध पिलाकर  
धुम्यन-सहित मुलाती थी ॥

कभी शान्त मुद्रा में कहती  
गीता इसे पढ़ाऊँगी ।  
छोटेपन से ही घोड़े पर  
चढ़ना इसे सिखाऊँगी ॥

पाला गुरु का दिया हुआ वह  
मन्त्र इसे बतलाऊँगी ।  
छोटी-सी तलवार धमाकर  
लड़ना इसे सिखाऊँगी ॥

समर-भीष अरि की छाती पर  
चढ़ना इसे बतलाऊँगी ।  
सकट में घिर जाने पर भी  
चढ़ना इसे सिखाऊँगी ॥

इसे सुनाऊँगी गाया में  
पुरुचेत्र के धीरों की ।  
सत्य-स्वत्व के लिए स्वतः  
- सिर देनेवाले धीरों की ॥

यह भी इसे बतल दूँगी मैं  
युग सिन्धु तरना होगा ।  
निम्न स्वदेश की रक्षा के हित  
उर शोषित भरना होगा ॥

चढ़ना होगा नभ मस्तक पर  
चढ़ना छत अँगारों पर ।  
ज्वाला बन दहराना होगा  
क्षप-क्षप क्षप बलवारों पर ॥

अरि शोणित से रजित चुँदरी  
देवी को देनी होगी ।  
परम्परित धीरत्व भाव की  
शिक्षा भी लेनी होगी ॥”

सदा ललककर हाथ बढ़ाकर  
अम्यर को छून बढ़ना ।  
मन में मौन यती सा कुछ-कुछ  
निर्निमेष पढ़ते रहना ॥

अनुभावों के नव पलन प  
चपल भाव से मुसकाना ।  
स्नेह-सरोवर के जल तल पर  
मुकुज सदृश नित लहराना ॥”

कमी नहीं मन की आकांक्षा  
पूर्ण किसी की होती है ।  
यही निरव में होता है जो  
प्रभु की इच्छा होती है ॥

प्रकृति सदा यह सोचा करती  
श्रुतु बसन्त ही बनी रहे ।  
सुपमा से मरिद्ध नव कलिका  
मधु मौरभ स सनी रहे ॥

सदा घालते रहे हमों पर  
धूम धूम पिक मतयाले ।  
भरे रहें मधु से सुमनों क  
नयल रुधिर रजित प्याने ॥

सदा नाचती रहं तितलियाँ  
पहने सतरगी साड़ी ।  
रहें भूमती मुदित पवन में  
पूलों की क्यारी-क्यारा ॥

पर वसन्त यीतते धरा पर  
ममाघात गरजता है ।  
नभ से वसुधा के अचल पर  
निशि-दिन अचल बरसता है ॥

सिसक पड़ा नभ, फँपी दिशाए,  
लगी विलसन महरानी ।  
वृण से लकर अचल टगों म  
छलक पड़ा छल-छल पाना ॥

हाथ ! लाल का तीन माम म  
शून्य गोद करके जाना ।  
परा-दीप पूजा स पहल  
भिलमिल करके चुभ जाना ॥

फौन शॉंग का तारा बनकर  
विमल प्रकाश दिखावेगा ?  
फेन हाथ की लकुटी बनकर  
पथ पर मुझे पढ़ावेगा ?

तप में लाल फूँगा किसरो,  
मौ फट तीन पुष्करगा ?  
अरण्यकुमार-सटरा फॉवर पर  
लकर फौन उषारगा ?  
भा०/१०





**आठवीं हुंकार**



या विरव पत्ता की जननी का  
पावन मुहाग नित भासमान ।  
जिससे भाँसी के कलित धाम  
चित्रित लगते थे कान्तिमान ॥

नीलाश्वर का था नर वितान  
नीचे सस्रति गाती विहाग ।  
लेकर पिचकारी वाल सूर्य  
था खेल रहा हँस रुचिर फाग ॥

नय धवल भीत पर चित्रित थे  
सीता सहचर अभिराम राम ।  
यी कुम्भप्र की समरभूमि  
प्रमुदित थे रथ पर पाथ श्याम ॥

रवि तनया के शोभित तट पर  
व्यापक फरील के सपन-कुञ्ज ।  
जिसमें बहती थी मुधा-घार  
या जिसे भमत भृग पुञ्ज ॥

नय शिशु सम कारी विहँस विहँस  
भरती गुरसरि की विमल गोद ।  
जिसका अनुपम सौन्दर्य देग  
नभ निराहार भरता प्रमोद ॥

रथ पर राजा दुष्यन्त मुदित  
खेसने जा रहे थे शिकार।  
तापस घाला थी टहल रही  
ऋषि का आभम था निर्विकार ॥

प्रमुदित हरिणी सहचर समेत  
लम्बी छलाँग थी रही भार।  
रथ के घोड़ों की गति असीम  
थी भरी चित्र में नयाकार ॥

कन्धों पर काँवर लिए अवण  
जा रहे देखने तीर्थराज।  
वे मातृ पितृ की विमल भक्ति  
का सजा रहे थे अमिट साज ॥

इन रङ्ग विरगे चित्रों से  
धमचमा रही थी नवल भीत।  
हैं चित्रकार वे परम धन्य  
भर दिया चित्रम रस अतीत ॥

क्या ही सुन्दर है विहंस रहा  
आश्रम सुमनों का सुखद साथ।  
जी में होता जी भर घूमूं  
उस चित्रकार के युगल हाथ ॥

यद्यपि चित्रों पर रानी का  
बुद्ध ध्यान अनोखा अड़ा रहा।  
पर चिन्ताओं की लपटों का  
था ताप हृदय पर धड़ा रहा ॥

मन में रानी थी साच रही  
कैसा सशक्त है विधि विधान।  
ये सभी शक्तियाँ आज तलक  
हैं धनी विरव में मूर्तिमान ॥

वनवासी, तपसी, राम मौन  
शुचिता गीता के श्याम मौन।  
शोणित से रचित पुरुक्षेत्र  
बोरों का ले धलिदान मौन ॥

फारस ईरान तलक फैला  
निसरु मुखदायक - विमल साज,  
बह भरत सण्ड होकर हतारा  
है पड़ा भूमि पर मौन ध्यान ॥

मयुरा, वृन्दावन, वरसाना  
रस के आगर भ्रज धाम मौन।  
यमुना - तट के नव - सपन - कुञ्ज  
हैं पूछ रहे क्यों श्याम मौन ?

धरुणा फी शान्त पद्धार मौन,  
विज्ञान, ज्ञान, तप, ध्यान मौन।  
जिसमें मरना है स्वर्ग - तुल्य  
रस फारा के अभिमान मौन ?

रत्नाकर नम से पूछ रहा  
क्यों मरे चारों धाम मौन ?  
क्यों विप्रभूट के राम मौन  
गीता का उज्ज्वल ज्ञान मौन ?

ले धीर सिक्न्दर लौट पड़ा  
जिस आर्य भूमि से ज्ञान मीन ।  
जो फण फण में था गरज रहा  
वह धीरोचित अभिमान मीन ॥

हे मीन मीन अब सिसक रहा  
यह धीर भूमि मेवाह आज ।  
जिसकी छाती पर फैल रहा  
हे वर्वरा का प्रस्त साज ॥

क्यों सत्यव्रत भारत सपुत्र  
राणा प्रताप का गान मीन ?  
क्यों केसरिया बाना धूमिल,  
क्यों धीरों का सम्मान मीन ?

जिसने रवि के रथ को रोका  
वह सती साहिबला आज मीन ।  
पति पर उज्ज्वल आदश मान,  
दाम्पत्य प्रेम का साज मीन ॥

जो निराकार नभ से आकर  
सावेत भूमि पर था खेला ।  
जिसने पथ पथ पर लगा दिया  
नव श्रद्धि सिद्धियाँ का मेला ॥

वे निराकार साकार बने ।  
फिर निराकार हो गए मीन ।  
हे कर्म ज्ञान में गूँज रहा  
अथ भक्ति भाव में कौन मीन ?

मैकधार लहर में छोड़ नाथ  
बिर निद्रा में नृप हुए मौन।  
कमल-कमोर-गजन में अथ  
देरों दिग आते कौन कौन ॥

आशा का पथ भी छूट चला  
पथ में लहराता अधरार।  
फिर भी नभ की नली चादर  
छोड़ माता करती दुलार ॥

नृप के रहते अँगरेजों की  
थी कभी न गलती रही दाल।  
ये आन समझर निराधार  
फँलाने हैं निज कपट-नाल ॥

पर यह न हृदय फिलनवाला  
अरि की बैसी भी हो न चाल।  
धरधरा सटेगा सम्मुख अथ  
जग का भाषण भी महाकाल ॥

जय लिया हुआ यह गोद-पुत्र  
हलहौजी का होता अमान्य।  
नय यह श्रुतज्ञता का बदला  
फिर हम ही क्यों होवें वदान्य ?

भारत का यह आदर्श नहीं  
श्रुतियों का है यह पुण्य धाम।  
युग युग स ही सप देशों के  
सद्धम धर्म का विधि लशाम ॥



इससे न कभी अरि पा सकता  
यह भौंसी का अति विशद राज ।  
इसके पद पर झुक जायेंगे  
निश्चय रिपु-दल के शीश-ताज ॥

पद्मिनी गगन से कहती है  
आवेगा जीहर से विहान ।  
पति के तन के ही साथ साथ  
जलकर मरना ही है महान ॥

मैं तो करती हूँ उसने ही  
दिखलाया अमला का स्वरूप ।  
क्या कर मैं ले तलवार नहीं  
धन सकती थी ज्वाला स्वरूप ?

अति कायरता का पाठ हम  
है पढ़ा रही वह दिव्य मूर्ति ।  
यदि अनायाम मिल जाय फही  
स्वीकार्य नहीं ऐसा मुकीर्ति ॥

मुझको करता है सावधान  
देवलदेवी का शुचि मुहाग ।  
आदर्श चमाचम दिखलता  
है रूपकुमारी का विराग ॥

अव्यक्त रूप में दिखलाती  
मुण्डों से मूतल पाट-पाट ।  
तलवार नचाता है वीरा  
वीरों की प्रीथा काट-काट ॥

कहती है कर्णवती प्रविचरण  
कर की फटार को रोक रोक ।  
कुन्तों से अपनी रक्षा कर  
अरि के सीने में भोंक-भोंक ॥

तारापाइ की अमल ज्याति  
हर रही मार्ग का अन्धकार ।  
फट रही इसी पथ पर चलकर  
माता का होवेगा सिंगार ॥

अतएव दुग को सीमा को  
करती है दुगावती प्रहर ।  
जा गरज गरजकर घटा रहा  
है यह शरार केवल नरवर ॥

हाइरानी का हाइ हाइ  
अपण फरवा निन शीरा काट ।  
चूड़ावत का है राल रहा  
नर शान मोह को फाट-छाँट ॥

है अमर लोक स सारन्धा  
करती है मुमछो सावधान ।  
अरि को मूली सम फट-फट  
गाओ भूवल पर विजय-गान ॥

नम की दाती पर चमक रहे  
है ललनाओं के नय विधान ।  
एम पथ पर हा चलन मे  
जागगा लगजा क विधान ॥

यह ज्ञान प्राप्त कर ले तुरन्त  
पीरुप है फितना अभी शेष।  
जिसके घल पर चिर निद्रा से  
जग सफ़ता है यह वीर देश ॥

रिपु को न गंध कुछ लग पाये  
है सकट का यह क्षण निदान।  
इस मिस से निर्जीवों में भी  
में कुछ डालूँगी नइ जान ॥

रानी ने सोचा करना है  
दामोदर का यज्ञोपवीत।  
फिर कभी नहीं मिल सक्ता है  
इससे बढ़कर अक्सर पुनीत ॥

इसलिए निमंत्रण ले लेकर  
सध ठौर ठौर पर गए दूत।  
जिसके आशय को समझ समझ  
हो गए मन्त्रग भारत-सपूत ॥

---

नवी हुंकार



पावस की सरस सुबेला थी  
बह रहा पवन था सर, सर, सर।  
गिरिवर की पुलकित छाती से  
निर्भर बहता था मर, मर मर।

मिलमिल मीना घूँदें नभ से  
अवनी पर भरती थीं मर, मर।  
लोनी लविफा लावण्यमयी  
लहराकर मन लती थी हर ॥

मन्दिर के घटों के रव से  
दिक्कॉप रही थी थर, थर थर।  
नित अन्तरिक्ष में विमल चेतु  
अनिरल उड़ता था पर, पर, पर ॥

मुक उमड़ घुमड़ घनघोर घटा  
घड़घड़ा रही थी घड़, घड़, घड़।  
सृण सपन - घटा फी चीर तड़ित्  
तड़तड़ा रही थी तड़, तड़, तड़ ॥

थी मटामहीधर के उर में  
प्रतिपल घड़घन होती घड़, घड़।  
अपनी तल की भी नीरपता  
घड़घड़ा रही थी पड़ पड़, पड़ ॥

या शिला खण्ड पर मोर भगन  
नभ थोर देखकर नाच रहा ।  
धन के पथरीले बन पथ पर  
था भरता हरिण कुलौंच रहा ॥

सर सरिता का पुलकित मानस  
हर्षित होकर था झोल रहा ।  
नव आम्र मजरी में बैठा  
पिक कुहू कुहू था बोल रहा ॥

रक्तिम किसलय की रसना से  
तरुवर शीतल जल पीते थे ।  
जल जन्तु जलाशय में सुम्ब से  
जल ब्रीड़ा धरते जीते थे ॥

यह हरय देव्यती थो रानी  
कर रहा पव की तैयारी ।  
मौंसी के कण कण में प्रतिपक्ष  
था खेल रही सुषमा न्यारी ॥

जलधर क्षण भर रुककर गन् से  
कुछ कहते थे सन्देश नया ।  
फिर हर्षित हो बढ़ते आगे  
लेकर उसका आदेश नया ॥

आमंत्रित अतिथि सभी आए  
सज राजे महाराजे आए ।  
यज्ञोपवीत के अवसर पर  
सरदार ठाट साजे आए ॥

केवल निनाम ही ऐसा था  
जो इस अवसर पर दूर रहा।  
मायामय भोग विलासों में  
पाकर मदिरा में घूर रहा ॥

ससको क्या चिन्ता थी रिपु के  
उन द्वेष भरी हुंकारों की।  
पशुवत् उनके व्यवहारों की,  
अन्यायी की पुकारों की ॥

नव अरुण कपोलों में भूला  
था अतिप्रसन्न पागल निजाम।  
होकर निवान्त घासना मत्त  
बह भूल गया था काम धाम ॥

शुभ लग्न बीच दामोदर का  
हो गया ननऊ रच रचकर।  
समुचित सबका सत्कार हुआ,  
पैठे सब राने सज सनकर ॥

यमोपवीत का उत्सव तो  
केवल अति व्याप्त घटना था।  
अरि की आँगों में धूल मोंठ  
भारत को पुन जगाना था ॥

बस एक छत्र के नाचे मिल  
पुत्र अपनी याव सुनानी थी।  
चित्रना पीरुप है अभी राप  
हसकरी ही याद लगानी थी ॥



रिपु-दल कड़ियों को तोड़ तोड़  
माता को मुक्त कराना था।  
अपना प्रसिद्ध वह गौरव ध्वज  
फिर से जग पर फहराना था ॥

निज धर्म कर्म की रक्षा का  
स्वर अति स्वतन्त्र भडकाना था।  
आराध्य भवानी का रिपु के  
मुण्डों से मान यदाना था ॥

उर उर के छिपे विचारों को  
खुल कर सब आज सुनाना था।  
बस एक पथ पर चल चलकर  
स्वातन्त्र्य गीत ही गाना था ॥

रानी धीरे ले धीरे भाव  
आ राज समा में खड़ी हुई।  
साकार भवानी नभ से आ  
मानो भूतल पर बदी हुई ॥

आँखों से चिनगारी चमकी  
बाणा में भभकी महाज्वाल।  
जन जन के उर में कसक उठा  
जीवन अर्पण का मधुर साल ॥

बोली रानी—'हे धीरों! अब  
यह समय नहीं है सोने का।  
हे समय हृदय के शोणित से  
जननी के पद को धोने का ॥

अब भीष्म-प्रतिष्ठा के समान  
प्रणकृता ही है होन का।  
दुःशासन अरि का हृदय चीर  
द्रौपदी फेशे हैं धोने का ॥

निर्मम-रिपु गण को काट काट  
रास्त्रास्त्र बीच है जीने का।  
श्रुपिवर कुन्मज-सम गण्डुलि पर  
हंस समर सिन्धु है पान का ॥

यदि अरि-दल धने सपन धन तो  
दावानल धन जाने का है।  
जयकेतु हिमालय क सिर पर  
हंस-हंसकर पहराने का है।

धर्म्यर में मंदिरान का है,  
भूवल पर लहराने का है।  
नव स्वतन्त्रता के मन्दिर के  
घण्टों को पहराने का है ॥

पयत को धरान का है।  
धण धण को पहरान का है।  
इस समर-धीच दुंधरों से  
अरि दिग्गज दहलान का है ॥

गद नदी, रूप, सर, वापी को  
शोणित से लहरान का है।  
नम धी नीली पादर को भी  
भूवल पर पहराने का है ॥

यह समय नहीं रनिवासों में  
 काकली बोल सुनने का है ॥  
 अथ स्वतंत्रता का समर बीच  
 परिधान विहँस धुनने का है ॥

अब समय आ गया है रिपु को  
 सगर का पाठ पढ़ाने का ।  
 माता के मन्दिर में हँसकर  
 अथ प्राण प्रसून चढ़ाने का ॥

भूले न कभी यह वीर वेप  
 धीरों में भरी जवानी है ।  
 कण कण में खूँज रही प्रतिपल  
 राणा की गाथा मानी है ॥

है अरावली गिरि खडा अभी  
 ऐसा पावन है धान कहाँ ?  
 चौहत्तर मन उपवीतों का  
 करता है जो सम्मान यहाँ ॥

सुनकर अोजस्वी धीर - शब्द  
 सारा समाज समतमा उठा ।  
 दीवान जवाहरसिंह उठे  
 कटि का कृपाण ममभमा उठा ॥

कर नमस्कार रणघण्टी को  
 फिर धीर भाव से घे घोले ।  
 क्षण शक्ति-सुधा के प्याले में  
 वीरत्व - वृत्त के रस घोले ॥

हे देवि ! न भय है मुझको अब  
रिपु-दल श्री विकट कटारों का ।  
मुझको है भवन जलाना अब  
अरि-दल के अत्याचारों का ॥

मैं तरस रहा हूँ प्स दिन को  
जय भरत-खण्ड पावन होगा ।  
अरि दल के सर के शोणित से  
भारत पर फिर सावन होगा ॥

माता के धन से पजे हुए  
नखर तन का अपण होगा ।  
मानस के गम सह स जय  
पितरों का नव तर्पण होगा ॥

रघुनाथसिंह ने भी वत्तण  
पद रज ले दिव्य भवानी के ।  
रत्न दिये धमकते चन्द्रहास  
सम्मुख भाँसी श्री रानी के ॥

बोले "हे माता ! इससे अब  
गंगा-जल से नहलाना है ।  
ले आशावाद भवानी का  
अरि-शोणित से सहजना है ॥"

रानी न कहा 'सखी सुन्दर ।  
सन्वर तुम गंगा जल लाओ ।  
इन नागिन-सी तनवारों को  
पद धोर मंत्र अब नहलाया ॥"

पर उन वीरों का आग्रह था  
माता निज कर से नहलावे।  
नहला नहला तलवारों को  
स्यासध्य मंत्र भी बतलावे ॥

रानी ने लेकर पावन जल  
तपती अग्नि को क्षण नहलाया।  
उन भरतखण्ड के वीरों को  
जय मंत्र बिहँस कर बतलाया ॥

उस जयनिनाद से एक साथ  
गढ़ का कण-क्षण दमदमा उठा।  
उन विजली सी तलवारों से  
क्षण राजभवन धमचमा उठा ॥

पर राजे रजवाड़े जो थे  
बैठे रह गये न धोल सके।  
उन वीर मंत्र के साथ तनिक  
वे जीभ न अपनी खोल सके ॥

जागी न स्फूर्ति उनके मन में  
वे मूर्तिमान ही अड़े रहे।  
अपने अपने नखर पद की  
चिन्ता में वे बे पड़े रहे ॥

यी बिहँस प्रतीची खोल रही  
अपने भवनों का स्वर्ण द्वार।  
जिसमें बैठी सभ्या घाला  
भरती फवरी में रत्न सार ॥

कर प्राण-प्रिया का आलिगन  
दिन-नायक भी हो गए मौन ।  
हो गई विसर्जित राज-सभा  
गढ़ साथ-साथ हो गया मौन ॥

नभ का सय साज विसर्जित था  
उड़ चले विहग निज नीड़-ओर ।  
तिमिराचल में सो गए सभी  
थे गिरि गढ़र, घन, भूमि-धोर ॥



दसवीं हुंकार





यीथागद म अगरेजों न  
अनाचार यह किया मशन।  
मृत गोरों का बदला लेने  
घृणित रूप से लिया विधान ॥

पकड़ पकड़कर श्रेष्ठ द्विजों को  
बटयाया मृत शोणित लाल।  
स्वच्छ कराकर उनसे ही फिर  
दिया अग्नि म उनको डाल।

अभी पढ़ रहा अजनाले का  
गुम्वद करणामय आख्यान।  
निसमें अरि न पन्द किया था  
छादठ बच्चों को नादान ॥

वे हिन्दू - कुल - दीप उजाले,  
माताओं क भोजे लाल।  
बिना धायु के तड़प - तड़पकर  
निरि म स्वग गये तत्काल ॥

देव रामुषो का बच्चों पर  
पेसा भीषण अत्याचार।  
माय मूमि रायी श्यामा भर  
दा मुत ! पढ़कर हृदय विदार ॥

मठी काल फोठरी का वे  
हमें सिखाते है इतिहास ।  
किन्तु उन्होंने छिपा लिया क्यों  
अजनाले का क्रूर विलास ?

अभी फरुखाबाद ले रहा  
जमी नवाबी का है नाम ।  
जहाँ रो पड़ा फूट फूटकर  
अरि सम्मुख मजहब इस्लाम ॥

पकड़ लिया रिपु ने नवाय को  
प्राण दण्ड का किया विधान ।  
तन पर भली बराह बसा फिर  
खी फाँसी से उनकी जान ॥

अवध बिलखकर दिखा रहा है  
जली हुई तन पर करे आग ।  
जहाँ शत्रु ने माँ बहनों की  
सज्जा से खेला था फाग ॥

साज न बचने के अवसर पर  
देख शत्रु का अत्याचार ।  
वेगम हजरतमहल शस्त्र ले  
हुइ काजि पर शीघ्र सवार ॥

चिप्लव दल के आगे आगे  
लेकर नागिन सी तलवार ।  
अंगरेजों का शीरा काटती  
गरज रही थी धारम्बार ॥

यद्यपि बहुत न वह टिक पायी  
किन्तु दिखाया जीवन सार।  
निज गौरव के पावन पथ पर  
रक्ता पावन शीश उतार ॥

बसा के जगल म अथ भी  
गूँज रही है यह आवाज।  
हे मानव ! तुम भूल न जाना  
यही छिपा है तेरा ताज ॥

यही कहीं पर छिपा हुआ है  
तेरा वह अन्तिम सम्राट्।  
फूँक दिया था जिसने जन हित  
अपना नश्वर धमक ठाट ॥

इसी भूमि की छाती पर है  
शोणित से रनित [रगून।  
सुनकर निस्सफी हुंकारों को  
गरम हो रहा अथ भी सून ॥

स्वतंत्रता के पार पुत्र का  
यही सौ रहा शान्त मजार।  
पता रहा जो अगरेजों का  
गरज गरज पशुपत व्यथहार ॥

बन्दी हुए राष्ट्र के दल स  
माट भूमि के चारों ताल।  
चो स्वतंत्रता के नार पर  
हंस हँसकर दंत ध दास ॥

अंगरेजों ने जान बूझकर  
किया दुष्टता कार्य महान ।  
अन्त समय में निज गोली का  
उन्हें बनाया सीधे निशान ॥

पूज्य पिता के सम्मुख चारों  
पुत्रों का ला रक्ता शीश ।  
और फहा 'लो शाह' तुम्हारी  
कुशानी की है यह फीस ।”

सुनकर यह सन्देश शाह का  
बदन हुआ दिनकर-सम लाल ।  
पुन हँस पड़े देख सुतों का  
सिर पावन शोणित से लाल ॥

गरज पड़ा अस्सी वत्सर का  
अस्थि चर्ममय वह फौलाद ।  
“इसी तरह बालिद के सन्मुख  
भाती तैमूरी औलाद ॥”

जर्जर काया शान्त हो गई  
नभ ने दुहराया वरदान ।  
इससे बढ़कर फीन करेगा  
अपने गौरव का सम्मान ?

सुनती थी जब रानी अरि के  
किए हुए ये अत्याचार ।  
और देखती थी आँखों से  
अंगरेजों का यह व्यवहार ॥

जाति - धर्म पर ऐसा सकट,  
माँ - बहनों का हाहाकार।  
जलते हुए घरों के भीतर  
यूढ़ - बच्चों का चीत्कार ॥

जलती हुईं लाज की होली  
जलता मिटता अपना देश।  
अपने बच्चों के शोषित से  
ईगा हुआ माता का वेप ॥

राजाओं का राज्य हड़पकर  
कर लेना निज शक्ति-अर्धीन।  
जिनका लक्ष्य यही अवनी पर  
रहे न कोई घर स्थापीन ॥

रहे न सिर पर अणु से चोटी,  
रहे न गीता का भी ध्यान।  
रहे न मस्तक पर चन्दन का  
पमचम धरता रुचिर - निरान ॥

रहे न हिन्दू - मुसलिमपन का  
जन जन में आपार विचार।  
रहे न अणु से हृदय - हृदय में  
भाई - भाई का व्यवहार ॥

मूल जायें सब मन्त्र श्रुत्वायें,  
मूने कलमा और पुणन।  
मूने सारथ्य योग ध्र पदना,  
मूने पोपी और पुणन ॥

रहे न नारी को स्वामी का  
पति को नारी का विश्वास ।  
जगी रहे जन्मद को सुत को,  
सुत को तात रक्त की प्यास ॥

भूलें हिन्दू जप, तप, धृत को,  
मुस्लिम रोजा और नमाज ।  
मसजिद में सूखे पैगम्बर,  
मन्दिर में रोएँ सुरराज ॥

तब वह फटती थी हाथों में  
लेकर नागिन सी तलवार ।  
अरि दल का हर चीर-चीरकर  
हरना है भू का यह भार ॥

सखियों ! सावधान हो जाओ  
करना है माँ का सम्मान ।  
अरि शोणित से घरणी धोकर  
करना है मुण्डों का दान ॥

**ग्यारहवीं हुंकार**





पावस की हरियाली पर  
नम मर मर धरस रहा था ।  
हाली पर व्यासा चातक  
पानी को तरस रहा था ॥

वैठी थी परत फुलाकर  
तरु पर नव विहगावलियाँ ।  
लतिका फोमल दल - फर से  
रच रहा चाँद्र की लड़ियाँ ॥

फल फूला के भूषण से  
सज्जित थी धन की रानी ।  
इठनाती थी अपनी पर  
नदियाँ की नइ जयानी ॥

उनको न शत्रु था अपनी  
मयादा के फूलों का ।  
या तुदिन - विन्दु से आश्रुत  
परिधान हरित - फूलों का ॥

गरमी से व्याकुल तरु - तरु  
चिचलय की जीम निधाने ।  
पी रहे मगन जल, धन पर  
ये हरित वसन ये हात्रे ॥

फरती थी खड़ी जुगाली  
गायें खुर पूछ समेटे ।  
घंटे थे काँप रहे थे  
चरवाहे बाँह लपेटे ॥

तन भाड़ भाड़कर घड़ड़े  
माँ से सटते जाते थे ।  
अबनी के हरित घसन पर  
सरवर भी लहराते थे ॥

घंटे किसान गाते थे  
तिनकों की ओपड़ियों में ।  
गदला जल भरा हुआ था  
पशुओं की ओपड़ियों में ॥

आते प्रामीण मगन हो  
घोमे सिर पर ले लेकर ।  
ये सड़े रोंगटे फूले  
जल - सीकर से तर होकर ॥

जल पूरित लहराती था  
खेतों की क्यारी क्यारी ।  
भू सस्य' श्यामला तन पर  
ओढ़े थी सुन्दर छाड़ी ॥

रानी के तन पर भूपित  
सुन्दर सिंघ - पाटाम्बर था ।  
उसके ऊपर से सादा  
नव, धवल रुचिर, प्राणर था ॥

वैठी थी आसन मारे  
मन में नव भाव जगा था।  
जिनकी उत्तमल-सुलमल में  
घटों से ध्यान लगा था ॥

वे सोच रही थी मन में  
पहले जन कष्ट हलूँगी।  
उस डारू सागर को मैं  
जीवित ही अथ पकड़ूँगी ॥

यदि लेकर घटमारों को  
चाहेगा मुमसे अड़ना।  
तो यहाँ पड़ेगा हमको  
सरियों को लेकर लड़ना ॥

तो प्रथम इन्हें पतला दूँ  
जो आगे अथ है करना।  
परवासागर में डारू  
सागर से है अथ लड़ना ॥

थी सुन्दर सुन्दर सरियों  
वैठी अपनी अंचल पर।  
लिय रहा पयन था भायी  
आदरा बिटप दल-दल पर ॥

बोनी रानी—हे सरियों।  
अथ है करपाल उठाना।  
परवा सागर में पलफर  
हे अति को रथ पिलाना ॥

- 11 सखियों सुनकर रानी ध्र  
आदेश विनव हो थोली—  
“है मौत भला किस रिपु के  
सिर पर यह सहसा डोली ?”

रानी क्षण विहँस उठी सुन  
सखियों की ऐसी धाणी ।  
वे लगी धताने रिपु को  
जिससे क्षम्पित थे प्राणी ॥

है सागर सिंह वहाँ पर  
जो डाला करता डक  
वरवा सागर सा फोमल  
है पैपा दिया सर माँ का ॥

अध चलकर उसको क्षण में  
है रण का पाठ पढाना ।  
धटमारों की हत्या धर  
जीते जी उसको लाना ॥

इसलिये न हो अब देरी  
यह समय न है खोने का ।  
जन हित धरि के शोणित से  
है हाथ त्वरित धोने का ॥

‘तो सुन्दर’ शीघ्र कहो तुम  
रघुनाथ सिंह से जाकर ।  
आयें मर्सी में उत्क्षर  
सेना की पूर्ण सजाकर ॥

चल ही उस ओर लहों पर  
बह रहता था सेनानी ।  
प्रात की पूजा करने  
घैठी आसन पर रानी ॥

शोभित ऊपा की शाली  
प्राची में बिहँस रही थी ।  
सुमनों की ढाली ढाली  
फूलों से मँहफ रही थी ॥

शिशु इस किरण माला से  
नन-कुकुम लेप लगाता ।  
गिरिराज - धवल मस्तक पर  
या स्वर्ण मुकुट मुसकाता ॥

सुपमा घैठी कोई से  
पंफज पर छा जाने को ।  
थी देख रही पय स्वस्तिक  
दधि स्वर्ण कलश आने को ॥

त्यो ही प्राचा ने रक्खा  
सोने का कलशा लाकर ।  
बल ही निज रम्य भवन को  
दधि - सर में मुदित नहाकर ॥

पय मंगलमय होत ही  
संसृति के प्राणी बल्ले ।  
पर स निपटने परपाहे  
अपनी - अपनी गायें ले ॥

किरणों ने झट्टू दे दे  
नम-घन को दूर हटाया।  
अपनी सुपना मणियों को  
अम्बर में मुदित बिछाया ॥

सृण में निकले माँसी से  
हथियार लिये सेनानी।  
सखियाँ पीछे पीछे थीं  
आगे माँसी की रानी ॥

घोड़े हिनना - हिननाकर  
निज धैराल दिखलाते थे।  
रवि की किरणों में कुन्तल  
धीरों के लहराते थे ॥

पढ़ती जाती थी सखियाँ  
सृण प्रलय मचानेवाली।  
सन्मुख फुफकार रही थी  
धेतवा नदी मतवाली ॥

कहती थी इठलाती हो  
लेकर यह नई जयानी।  
साहस हो तो अब रोको  
मेरी यह गति मस्तानी ॥

रुक गए पुलिन पर घोड़े  
मीलों तक फैला जल था।  
ललकार रही थी तटिनी  
पहल न दिखाई यल था ॥

उत्ताल तरंगे ऊपर  
उठ उठकर गरज रही थीं।  
कोई न करे दुस्साहस  
मानो वे धरज रही थीं ॥

तट पर के महाविटप भी  
सोते जाते थे जल पर।  
हो रहा प्रलत-नर्वन था  
उस घनस्थली के तल पर ॥

पवि सम पापाण फगारा  
थों दूट दूट गिरता था।  
उनका वह भीषण क्रन्दन  
उर उर में भय भरता था।

यहवा था प्रखर पवन भी  
पत्थर सा उर दहलाकर।  
आगे यदवा जाता था  
आघनी पर विटप मुलाफर ॥

इसलिये न तिर सञ्चती थी  
तरणी भी सटिनी उन पर ॥  
बैठ थ नाविक चुप हो  
सरिता के मलिन पुलिन पर ॥

उस पार बनाली ओढ़े  
या नूवन हरित - दुराला।  
थी गिरि-भस्त्र पर शामित  
शुषो थी सुन्दर - मान्वा ॥



जिसकी शीतल छाया में  
सोए थे जलधर आकर ।  
कितनों को उड़ा रहा था  
मारुत चत्पात मचाकर ॥

रानी ने मुड़कर देखा  
सैनिक चुपचाप खड़े थे ।  
जीवन के नश्वर तन की  
माया में विकल पड़े थे ॥

वह पुनः विहँसकर बोली  
“क्या कर सकती है सरिता ?  
सखियों ! तरणी बनकर है  
तिरना शोणित की सरिता ॥

इसलिये शीघ्र ही शीरो  
धेतवा नदी की छाती ।  
हम सबको अभी धधाना  
है मों की शुचिता याती ॥”

यह कहकर रानी कूदी  
तटिनी के जल भ्रामण में  
फिर कूद पड़े सब सैनिक  
रव गूँज उठा कण-कण में ॥

घोड़ों का तन झूठा था  
केवल ऊपर मुख तन था ।  
जिनके सम्मुख दिखलाता  
हर क्षण जल आवर्तन था ॥

पीठों पर सेनानी थे  
नीचे अथाह पानी था।  
सबसे आगे रानी का  
घोड़ा वह तूफानी था ॥

सबको घतलाता जाता  
सरिता का मार्ग सुगम था।  
लहरी के घटस्थल पर  
पानी न कहीं भी कम था ॥

रानी भी गरज गरजकर  
नव साहस बढ़ा रही थी ॥  
नागिन सी अस्ति धारा पर  
नव पानी बढ़ा रही थी।

सरियों! अब पार हुई हो,  
सम्मुख दिखलाता थल है।  
अब पार हो गई हो तुम  
घोड़ा ही गहरा जल है ॥

हूये सवार थे जल में  
सिर ही केवल ऊपर था।  
वह भी जल के सींकर की  
पूँदों से पूरा तर था ॥

सबसे पहले राना पर  
घोड़ा पहुँचा दिननाकर।  
बढ़ गया उदलकर लट पर  
माथा को शीरा नवाकर ॥

रानी ने कहा गरजकर  
देखो है यही किनारा ।  
आओ अब दूर नहीं है  
जीवन का सुख सहारा ॥

क्षुण्ण में ही सैनिक सखियाँ  
हँस पार हो गई सरिता ।  
सिर के ऊपर मुसकाता  
जीवनदायक था सविता ॥

स्वातन्त्र्य पथ के राही  
भीगे पट सब फैलाकर ।  
क्षुण्ण दल की मृदु शय्या पर  
बैठे छाया में आकर ॥

करके आराम सभी ने  
फिर सैनिक वेप बनाया ।  
चढ़ गए उछलकर हय पर  
माता को शीश नवाया ॥

पलकों के गिरते गिरते  
वे लगे गगन में उबने ।  
निज टापों के वारों से  
वे लगे पवन से लहने ॥

धरवा सागर क गढ़ का  
था क्षत्रु गगन में उड़ता ।  
जिसकी सुपमा पर मोहित  
सलघर क्षुण्ण भर था रुकता ॥

मुफ़्ता न कभी भी नभ में  
यह फेतु महा अभिमानी ।  
अम्बर में लहरावा लख  
श्रुति छुव हो गई रानी ॥

म्यानों से निकल तत्क्षण  
चमचम करती तलवारे ।  
गढ़ की धाती पर गरजीं  
भाँसी का निष्ठ फटारें ॥

धरधरा लठी यह अक्की  
हिल गया दुर्ग मतवाला ।  
तलवारों के सापों से  
किरणों में भमड़ी ज्वाला ॥

फर जाड़े पुर जन घोले  
यह सागरसिंह नहीं हैं ।  
भय से काँपते हृदय से  
धाती शुद्ध बात सही है ॥

रानी योनी तप लसकी  
अथ टाँक-टाँक धतलाओ ।  
यदि शुद्ध बल रखत हाँवो  
सम्भुर अथ सद्ग उठाओ ॥

गिर पड़ दुर्ग के प्राणी  
रानी के पद पर लप में ।  
गूँजा आदेरा गरबठा  
गढ़ के कम्पित कर कर में ॥

मिल गया भेद डाकू का  
क्षण में ही उस रानी को।  
कह चठी गरजकर 'देखो  
पकड़ो उस अभिमानि को ॥

इस समय लुटरो के संग  
खिसनी वन में रहता है।  
उस गहन विपिन में छिपकर  
सबका वेभब हरता है ॥

तो छिपे छिपे ही चलकर  
घेरो उस तममय वन को।  
चलदल सब कम्पित कर दो  
उस अभिमानि के मन को ॥

देखो इस विकट दशा में  
है सँभल-सँभलकर चलना।  
पर ध्यान रहे इतना ही  
जीते जी उसे पकड़ना ॥

क्षण में घेरा फिर सब ने  
उस अटवी को सेनानी।  
कुछ लगे छानने वन को  
अथ छिपे छिपे सिरदानी ॥

इतने में पड़ा दिव्याइ  
दीपक का विमल उजाला।  
जिसकी मुरमुट वन लटकी  
थी रहिव-लता की माला ॥

छूटी गोली सैनिक की  
क्षण फॉप उठा वह फानन।  
इतने में लगी परसने  
भाड़ी पर आग दनादन ॥

हाकू भी दूट पड़े सव  
ले लेकर अपने भाले।  
थोड़े ये टिक न सके ये  
पड़ गए जान के भाले ॥

सो गए अवनि पर क्षण में  
तलवारों के धारों से।  
तर तर शोणित बढ़ता था  
फरवारों की धारों से ॥

अथ सागरसिंह अकला  
रह गया युद्ध म लड़वा।  
मन ही मन जय आशा का  
वह मग्य सतत था पढ़ता ॥

फिर प्राण बचाकर भागा  
रस ओर निघर थी रानी।  
सतिर्या की तलवारों का  
धमधम करवा था पानी ॥

रानी न कदा गरजकर  
शरिरियों। भय शस्त्र पलाओ।  
जीते जी इसको पकड़ो  
पीटे निज पाजि उड़ाओ ॥

इतना कहकर रानी ने  
घोड़े को पकड़ लगाई।  
कुछ ही दूरी पर डाक  
वह मागर पड़ा दिखाई ॥

अब देर न थी रानी को  
सागर को पा जाने में।  
उसका हय निज घोड़े के  
घेरे में था लाने को ॥

तब तब रानी के ऊपर  
उसने तलवार चलाई।  
अपनी असि से रानी ने  
अरि असि दो खण्ड बनाई ॥

बल भर प्रयत्न करने पर  
था नहीं छुड़ा वह पाया।  
नम के सिर पर रानी का  
नव विजय केतु लहराया ॥

मट सागर के हाथों में  
पड़ गई शायद हयकड़ियाँ।  
उसके रक्तिम नयनों से  
छूटी आँसू की लड़कियाँ ॥

रानी बोली "अभिमानी।  
यह समय नहीं रोने का।  
निज बन्धु जनों को दुख दे  
यह समय न है खोने का ॥

अथ धोल बजा निज इच्छा  
क्या मन है अथ करने का ?  
तो शपथ इसी क्षण सम्मुख  
निज देश कष्ट हरने का ॥”

हो गया मुक्त सागर भी  
माता को शीश नवाया ।  
लेकर कर में गंगा जल  
प्रण सपको शीघ्र सुनाया ॥

“माँ ! जय तक गर्म लहू है  
जन जन का भार हर्लूंगा ।  
नरवर तन की आहुति से  
माँ का सम्मान करूँगा ॥”

सप यही वीर सागर भी  
हो गया देश अभिमानी ।  
रानी का मंत्रिक धनकर  
रक्ता स्वदेश का पाना ॥

---





ब्राह्मवीं हुंकार



निशि भर अघनी पर अम्यर  
बरसा हिम-माल रहा था।  
असहाय काँपता मारुत  
दल-रल पर भटक रहा था ॥

हिम - शिला सदृश घरणी का  
शीतल श्यामल अंचल था।  
सिर नीचे किए व्यथा से  
सुमनों का फोमल दल था ॥

नीरवता के शासन में  
निद्रुप सोया जन रय था।  
भूतल पर टहल रहा था  
हिम-सहपर तम - दानय था ॥

बुद्ध कोल - भील के बच्चे  
नंगे ही नाच रहे थे।  
व तुनक - तुनकफर माँ स  
रान को माँग रहे थे।

बुद्ध को घटि में पियड़ों की  
लिपटी केवल धोती था।  
किनके मने धानन को  
माता जल से धोती थी ॥

फटती थी रात अभी है  
सो जा मुझा ! आँचल में ।  
आँखें थी दोनों डूबी  
घात्सल्य-जलधि के जल ॥

माँ के तन पर भी मैला  
सौ छिद्रों का कपड़ा था ।  
वह तन वर्फीले तल पर  
मानो निश्चिन्त पड़ा था ॥

मोपड़ियों में मूतल पर  
छाती से पैर सटाए,  
वैठे थे दीन कृपक जन  
स्वेतों पर ध्यान लगाए ॥

चनक्री बाहों के भीतर  
जलती थी पावक-ज्वाला ।  
अब वह भी पहन चली थी  
नव शिरार कणों की माला ॥

हिमकर का श्वेत बदन भी  
कुछ कुछ घूमिल लगता था ।  
ले अंगराग ओले का  
मारुत तन पर मलता था ।

निशिपति भी लिए हुये थे  
फन्धे पर श्वेत दुराला ।  
अघपके हरे खेतों पर  
पड़ता था हँसता पाला ॥

थी माप निकलती ऊपर,  
कम्पन था जल के तल में।  
कुछ-कुछ गरमी थी अथ भी  
भूतल के गहरे जल में ॥

धनचर अपने गहर में  
शिशु को लेकर सोता था।  
सारों की आँखों से नभ  
ध्याकुल होकर रोता था ॥

उपा शिशु रवि को लेकर  
साईं थी स्वर्ण-महल में।  
भौंरे सोए थे सुख से  
पूलों के मुकुलित दल में ॥

लहरें सोई थी नीरव  
पनपट के गर्म हृदय में।  
सीरम सोया था सुर से  
पुष्पों के मधुर हृदय में ॥

प्राची के सुरद सदन में  
सोया था शान्त सपेरा।  
तरु-पाँसों की मुरमुट में  
नीरव था विहग-बसेरा ॥

लविहा लिपती थी तरु से  
बाँदों से बाँद मिलाकर।  
सोई कितलत पर कलियाँ  
बल-अंजन एगिह दिलाकर ॥

ऐसी भयशीला निशि में  
जब गिरि भी काँप रहे थे ॥  
निर्भर गह्वर सर्दों से  
व्याकुल हों हाँप रहे थे ॥

रानी सखियों को लेकर  
घचल घोड़े पर चढ़कर,  
तोपों को सजवाती था  
माँसी के उन्नत गढ़ पर ॥

पढ़ती थी मंत्र सतत वह,  
नारी-सेना जगती थी ।  
बन्दूकों के गर्जन से  
ध्वना थर थर काँपती थी ॥

फाटक फाटक पर तोपें  
विधिवत् रक्खी जाती थीं ।  
परकोटों के मस्तक पर  
वे हँसती मुसकाती थीं ॥

कहती थी वीरों ! कुछ भी  
चिन्ता न करो मरने की ।  
रह जाय न तिल भर धरणी  
अरि को गढ़ में घड़ने की ॥

मिट जायँ शलभ - सम गढ़ के  
बाहर अरि के सेनानी ।  
फिर जाय वीर मतवालों ।  
रिपु की आशा पर पानी ।

निज तोपों की ज्वाला में  
अरि की तोपें जल जायें।  
भाँसी का अचल वीरो !  
अरि मुण्डों मे भर जायें ॥

चलवार! के वारों से  
सर में शोणित लहराये।  
स्वातन्त्र्य ध्वजा अम्यर में  
अरि प्राणों से फहराये ॥

फाटक फाटक के रक्त  
वारो ! वरदान यही है।  
इससे बढ़कर अथ पावन  
इस जग में स्थान नहीं है ॥

यह महायश है जिसमें  
अरि का आहुति देने है।  
यह स्वतंत्रता की तरणी  
अरि शाणित पर खेनी है ॥

धीरों ! जी जान लगाकर  
धारुद पहाड़ बना दा।  
विपथर गोत्रे परसाकर  
रिु दाढ़-दाढ़ धरा दा ॥

धोन वान से अरि की  
नव-ज्वाला भभठ उठा है।  
अथ दर न है सिरदाना !  
धिर-माला चमक उठी है ॥



इसलिये शीघ्र ही गढ़ की  
अब नाकेबन्दी कर लो।  
कर में अति पानी लेकर  
माँ का अभिवादन कर लो ॥

पूरी सामग्री रख लो  
अब अधिक विलम्ब नहीं है।  
रजवाड़ों की सेना का  
कोई अवलम्ब नहीं है ॥

हिन्दू कुल इस शिवा ने  
जनता की सेना लेकर,  
मन्दिर का मान किया था  
अरि बल की आहुति देकर ॥

छोटे छोटे अर्यों पर  
मोपड़ियों से बल लेकर।  
माता का मान किया था  
जन जन की तरणी लेकर ॥

उस समय यहाँ के नृप तो  
अरि को ही माथ नवाकर,  
बैठे थे माँ बहनों से  
रिपु का दरवार सजाकर ॥

कुछ तो आपस में लड़कर  
शोणित की नदी बहाकर,  
हँस खेल रहे थे होली  
भाई का भवन जलाकर।

राणा प्रताप की गाथा  
क्षण-क्षण में गुँज रही है।  
जन जन से प्रश्न सतत वह  
हँस हँसकर पूछ रही है ॥

योलो उस धनवासी का  
किस नृप ने साय दिया था ?  
तन से जन से या धन से  
किसने सम्मान किया था ?

उनका सेना में केवल  
धे फोल-मील मतवाले।  
झोपड़ियों में घासों की  
रोटी पर पलनवाने ॥

निर्जर के शीतल-जल को  
पी पीकर पढ़नेवाले।  
धम्पर के ही धम्पर स  
लज्जा को टफनवाने ॥

इसलिए हमें भी है अथ  
जनता को गले लगाना।  
झोपड़ियों के ही थल पर  
ए राण का पिगुल बनाना ॥

हे भारत के नव गौरव !  
मण सन्देरा यही है।  
रूप से लेकर मूषर को  
मण आदरा पारो है ॥

यह धरणी है धीरों की,  
धीरों की यह जन्मी है।  
इसलिए आज तन-मन से  
इसकी रक्षा करनी है ॥

हम सब के नरवर तन में  
माता का प्यार छिपा है।  
हम सब के गर्म लहू में  
माँ का सत्कार छिपा है।

इस प्रखर शीत-पाले में  
तलवारों की ज्वाला से।  
शिख का अभिवान धर लो  
अरि-मुण्डों की माला स ॥

सुन रानी का जयघोष प्रवल  
अभ्यर समतमा उठा था।  
प्राची का लोहित आनन भी  
क्षण में दमदमा उठा था ॥

लेखनी हुंकार



ऋतुपति के शर की मारों में  
घायल होकर जाड़ा भागा।  
मिल सकी न उसको कहीं शरण  
इससे उसन भूतल त्यागा ॥

उसके घायल पर छा शोणित  
गिरता जाता था भूतल पर।  
इसलिये युगल ऋतु के रण से  
हो गए रत्न से तरह तरह ॥

इसलिये टहनियों से निकले  
नव-कौमल-फिसलत लाल-लाल।  
या फहराती थी माधव की  
अय - ध्वजा बनाली लाल लाल ॥

धामों की ढाल ढाली पर  
पिंक ने पंचम स्वर में गाया।  
तह तह की हरित टहनियों पर  
सौरभ - सुपमा में लहराया ॥

मुसफाई कलियाँ मुमनों के  
रंजित रिसलत के अंपल में।  
भर गया नया - वन्साध स्वरित  
अवनी के हरित दल दल में ॥

गढ़ के छत पर बठी रानी  
थी सजा रही नव वीर-वेप।  
उसके आनन को श्रद्धा से  
अप देख रहा था वीर देश ॥

यह साज नहीं था रानी का  
यह था शृङ्गार भवानी का।  
या रूप धरा पर चमक रहा  
या सती पद्मिनी रानी का ॥

सिर पर टोपी थी चमकदार  
जिसका लहराता रंग लाल।  
या चूम रहा जिसका पद मुक  
अधनी का भीषण महाकाल ॥

जिस लाली से नभ से भू तक  
हो गई प्रभा भी लाल-लाल।  
या स्वतंत्रता के मन्दिर का  
मरणा फहराया लाल-लाल ॥

नव मोती की लड़ियों जिसमें  
चमचमा रही थी चम, चम, चम।  
था रुचिर गले में हीरे का  
नव-हार दमकता दम, दम, दम ॥

थी कमरबन्ध में मशक पूर्ण  
पिस्तौलें भयद लटकती थी।  
क्षण जहाँ पहुँचकर रिपु-दल की  
हुंकारें सकल अटकती थी ॥

नव फमरवध में विप-मंडित  
था पेशकब्ज भी दमक रहा।  
था प्रलय घटा में छिपा हुआ  
मानो पवि चम चम चमक रहा ॥

भुजवध भुजा पर राज रही,  
था शौर्य शक्ति से खेल रहा।  
रानी का रोम-रोम प्रतिपल  
हर हर शकर था धोल रहा ॥

किंकिनी फड़फड़कर फहती थी  
सारा ससार हिला दूँगी।  
गोरों की तोखी घोषों को  
मूनकारों से दहला दूँगी ॥

पश्चिम की ढाल दहा दूँगी  
पूरुब की चाल दिरा दूँगी।  
रण-धीप राउ को गरज-गरज  
लड़ने की कला सिखा दूँगी ॥

सहसा ध्यानन चमचमा उठा  
युग अधर शीघ्र ही फड़क उठ।  
क्षण कात्यूट से भी विपपर  
रानी के रद ये कड़क उठ ॥

“गर्वाँतो मेरी है मैं न कभी  
धरि को यह गढ़ लेने दूँगी।  
दे मातृ-भूमि की शपथ आप  
धरि को न कमा सोने दूँगी ॥”  
मई ०/१४



इस अचल प्रतिज्ञा को नम ने  
क्षय गरज गरजकर दुहराया ।  
वीरत्व—भाष माँसी गढ़ के  
वृण-वृण कण-कण में लहराया ॥

सागर से चल अंग्रेज रोज  
माँसी के चहुँ-दिरि चमक उठा ।  
पौ कटी उपा के गृह में भी  
क्रोधित रवि आनन दमक उठा ॥

कामासिन देवी के पीछे  
दुरमन का डेरा लहराया ।  
अरि की सेना को देख शीघ्र  
गढ़ का मगडा भी फहराया ॥

छत पर ही रानी चौक पड़ी  
मुकफर गढ़ के नीचे देखी ।  
जैसे नम में घन के टुकड़े  
वैसे भू पर डेरा देखी ॥

मानस गद्गद हो उठा शीघ्र  
आँखों से चिनगारी चमकी ।  
चंदी दिनमणि सम चमक उठी  
रानी की युग चाँहे फटकी ॥

वह सोच रही थी धार धार  
मन था मयूर सम नाच रहा ।  
लोहित आनन पर रौद्र रूप  
साकार घरा पर राज रहा ॥

है आज मिला अबसर मुझको  
हैंस प्राण-प्रसून चढ़ाने का ।  
नारी के दुर्बल हाथों की  
हैंस करामात दिखलाने का ॥

वीरों को पुनः जगाने का,  
पना को शीश नवाने का ।  
जन-जन्मभूमि का इस रण में  
हैंस-हैंस अणु पूर्ण चुकाने का ॥

है समय मिला रणचण्डी को  
जी भर कर रक्त पिलाने का ।  
बढ़-बढ़कर स्वप्नवाली को  
अरि सिर-माला पहनाने का ॥

अरि को यह आज दिखाना है  
मेरा बढ़ देरा पुराना है ।  
जिसने मुगलों को छका दिया  
अब भी बढ़ राजपुताना है ॥

इसके अणु-अणु में गरज रही  
वीरों की, रणदृष्टार अभी ।  
हैंस रहा प्योम में वीरों का  
अपने स्वदेरा का प्यार अभी ॥

अब भी मुरसरि के मानस पर  
विप्रिष्ठ यह वीर-शहानी है ।  
अब भी पद्मरावा कीर्ति-पूजा  
पिचोड़ दुर्ग अभिमानी है ॥

( २१२ )

मोतीबाई मुककर बोली  
“मैं ले लूँ बोरों की टोली ।  
यदि मिले आपकी आशा तो  
अरि-खेमों से खेलूँ होला ॥”

रानी ने कहा “सुनो आली !  
ऐसा रण है आसान नहीं ।  
इस तरह विना सोचे रण में  
हो सकता है सम्मान नहीं ॥

इतना न समझना अरि दल के  
खेमे की सरल कहानी है ।  
विकराल-काल-सम मुँह धाये  
अरि तोष क्षिपी तूफानी है ॥

इसलिये दुर्ग की तोपों से  
ढेरो पर गोले धरसाओ ।  
इस तरह रोज की छाती पर  
हँस-हँसकर गोले घड़काओ ॥

नभ से अथ पावक धरसाओ,  
भू पर चिनगारी लहराओ ।  
इस समर-यज्ञ में अरि-दल के  
प्राणों की आहुति दिलाओ ।”

जय इधर हो रहा था विचार  
रिपु-दल के गोले गरज उठे ।  
सैय्यर फाटक की छाती पर  
विध्वंसक गोले गरज उठे ॥

क्षण वीरदुर्ग दमदमा उठा  
मारों से रचक आह न की।  
या प्रलय-सदृश वह गरज उठा,  
गोलों की कुछ परवाह न की॥

उसने जावन में देखा था  
पुरुषों के व अरसी घाव अभी।  
घावों से चर्जर नरवर की  
रण करने की यह घाव अमा॥

वह सोच रहा जय मानव के  
धर में ऐसा अभिमान भरा।  
मानवता का सम्मान भरा'  
भारत का गौरव-गान भरा॥

जय अस्थि-धर्मभय पाया के  
वीरों की अवल कहानी है।  
अनिच्छी गाया है सुना रहा  
हंस कुच्छेय अभिमानी है॥

अब भी अम्यर में बमक रही  
वारों की त्याग निरानी है।  
अब अरावली के कण-कण से  
सुन पड़ती वीर-कहानी है॥

मेरे उर में है ध्यात तत्त्व  
दुन्दर-पवि सम पापायों के।  
दुन्दरे-दुन्दरे धर दूंगा मैं  
अरि-दल के सींग बाणों के॥

क्या धीर-हृदय भी दहल उठे  
गोली गोलों के चारों से ?  
क्या धीर-केसरी कॉप उठे  
जम्बुक-धरि की हुंकारों से ?

मद-मस्त-द्विरद रुक जावे क्या  
रिपु-कुत्तों के गुराने से ?  
रण-शूर-हृदय क्या कॅप जावे  
कायरता के धमकाने से ?

मैं दिग्दिगन्त दहला दूँगा  
नम को भूतल पर ला दूँगा ।  
लेकर अञ्जलि मैं धरि-शोणित  
माता को मैं नहला दूँगा ॥

गढ़ मन ही मन यह कहता था,  
गोले पर गोले सहता था ।  
अपनी छाती उक्ताज किये  
भाँसी की जय-जय कहता था ॥

गढ़ के बाहर धरि की सेना  
छिप-छिपकर प्रतिपल बढ़ता थी ।  
'अध दुर्ग लिया अध दुर्ग लिया'  
यह मंत्र सतत यह पढ़ती थी ॥

चलती गोली की छादर के  
नीचे रिपु की सेना बढ़ती ।  
जैसे अपने बिल से निपली  
चींटी की हो सेना बढ़ती ॥

ये दुल्हा जू औ सुदावरसा  
चुपचाप तोप को घटा रहे।  
रणनीति कला के पन्ने को  
ये उलट-पलट कर पढ़ा रहे ॥

अरि की सेना आगे धक्कर  
ललकार उठी, किलकार उठी।  
अपने घेरे के घोष देग  
गढ़ को तोपें हुंकार उठी ॥

फिर एक साथ हा गरन गरन  
बै लगी उगलने आग प्रथल।  
जल जलकर राख लगी होने  
अरि की बढ़ती सेना पीदल ॥

द्विने भूतल की शैष्या पर  
सो गये शान्त होकर निरथल।  
द्विनो के वन से बढ़ती थी  
शोणित की परनाली फल फल ॥

सायन के घन की मारों से  
जैसे पषव मरवा मर मर।  
आहत अरि के वन से जैसे  
थी रक्त धार बढ़ती तर-तर ॥

द्विने थ पड़ कराह रहे,  
द्विने साकर पिल्लाते थे।  
द्विन पड़कों में गोली  
भरत-भरते गिर जाते थे ॥

कितने कहते थे "भगो भगा  
कितने कहते थे "रुक जाओ"।  
कितने कहते थे मरने से  
अच्छा है चलकर मुक जाओ ॥

गोरी पलटन शोणित से तर  
कहती यह कैसी रानी हैं ?  
हो गया आज से दुर्लभ अथ  
वह टेम्स नदी का पानो है ॥

अथ लौट न पावेंगे घर को  
यह रानी बनी भवानी है।  
इसके आगे हम लोगों की  
अबला - सम बनी जवानी है ॥

थे नहीं जानते भारतीय  
नारी में अभी रवानी है।  
अथ भी यमुना की धारा से  
सुन पड़ती वीर कहानी है ॥

तो कभी नहीं हम पद रखते  
यह वीर देश अभिमानी है।  
नारी में अथ यह शक्ति भरी  
तो नर की कौन कहानी है ॥

लेकिन अथ क्या कर सकते हैं  
घर सप्त सिंधु के पार बसा।  
है इधर हमारे हृदयों में  
रानी का जय जयकार घँसा ॥

( २१७ )

जय तक अरि-सैनिक सोच रहे  
थे रणस्थली में मौन खड़े ।  
तब तक गढ़ से उनके ऊपर  
शत गोले क्षण में धरस पड़े ॥

गोरी पलटन सो गढ़ शीघ्र  
शोणित से रजित दलदल पर ।  
है पये सेव को फाट कृपक  
जैसे रख देता भूवल पर ॥

जग उठी प्रतीची' हुई मगन  
यह विजय देखकर विह्वल उठी ।  
तरु तरु की शिखा-शिखा पर थी  
रग की पंचायत चहुँक उठी ॥





चौदहवीं हुंकार



रात का पहला पहर था  
अवनि सोती थी सुनिरचल।  
थक गया था वायु चलकर,  
सो रहे थे मौन शतदल ॥

भाग निरचल सो रहे थे,  
राजपथ भी सो रहे थे।  
माछू भू की गोद में सब  
भाव जग के सो रहे थे ॥

बृह सरसिज के भवन में  
भृगु सुग से सो रहा था।  
व्योम खोकर हसमणि को  
मौन होकर रो रहा था ॥

भीगवा—सा ना रहा था  
हरित मी का शान्त अंचल।  
कालिमा में था दिग्वावा  
दीप जुगुनू का नया दल ॥

सो रही थी शान्त लहरें  
नार की शैष्या पिद्मानर।  
सो रहे रंग पौसलों में  
साध्य गीगावलि मुनकर ॥

सुन अगर पढ़ता कहीं तो  
भींगुरों का राग प्यारा ।  
पूब की काली दिशा को  
या जगाता शुक्र तारा ॥

कौन कह सकता भला या  
कालिमा में क्या छिपा है ?  
आज के दृग मूँदने में  
नियति ने क्या ढव रचा है ?

भूमि पर जिसके लिये  
राजा बने थे दीन त्यागी ।  
राजपद के त्याग की थी  
विमल सर में बुद्धि जागी ॥

मौ-बहन ने रूप की  
होली जला जिसको बगाया ।  
तुच्छ नरवर देह का  
यौवन सरस जिस पर चढ़ाया ॥

- मान का सौदा किया या  
मौंग का सिन्दूर घोकर ।  
सरस सावन में सलोन  
रूप का संसार खोकर ॥

जनक जननी ने विहँसकर  
प्राण प्रिय निज लाल त्यागा ।  
धृढ भामाशाह ने निज  
कोप का मणि लाल त्यागा ॥

जिस लिये क्षत्राणियाँ थीं  
प्राण - बल्लभ का सजाती,  
हाथ में तलवार दकर  
युद्ध में निर्भय पठाता ॥  
हो गये प्रासाद कितने  
आन पर जल रास क्षण में ।  
मान हित कितने विभय भी  
सो गये चिर धूल क्षण में ॥

अधभेदी दिव्य नगरी  
हो गई जनहीन क्षण में ।  
गूँझता तिनका अमर  
इतिहास अथ भी है गगन में ॥  
पुण्य भारत देश के नय  
मान को क्षण में मिटाने ।  
षष्ठ पदे दो नीच गद्द से  
भेद रिपु - दल को बताने ॥

कालिका सी घमनिष्ठा  
कम को सज्जल—निरानी,  
अरिद्वेषा सी धार — पूज्या  
शौर्य — जननी — राचराना,

थी सुनायी वीर—जन को  
दश की पावन—दहानी +  
थी बतायी मार्ग तिससे  
रद सके शुचि गंग—पानी ॥

( २२४ )

फूँकता थी मंत्र रानी  
जग छठी थी रूप-माला ।  
फूल में भी जग छठी थी  
क्रोध की दुद्धर्प—ज्वाला ॥

कल अभी तक जिस घदन पर  
थी विहँसती पुष्पमाला ।  
राग में भी म्निप रहा थी  
स्वर्ग की भी देव बाला ॥

कर वरण में राजती थी  
मेंहदी की दिव्य-लाली ।  
हाथ में थी धमचमाती  
पुष्पमय — कलघौत — थाली ॥

जा रही थी देव-गृह में  
फूल की माला घदाने ।  
देव—मंगल के लिये  
केराव—कुलेखर को मनाने ॥

गा रही थी गीत जिसमें  
स्वत्वमय—अभिमान हँसता ।  
रागिनी के साथ था निज  
देश का सम्मान हँसता ॥

आज निशि में - फूल सी  
कोमल नगर की दिव्य-माला ।  
त्यागकर तन के कुसुम को  
थी पहनती अर्चि—माला ॥

हाथ में वी चमचमाती  
चबला सम लड्ग माला ।  
गात में थी दमदमाती  
क्रोध की दुद्धर्प ज्वाला ॥  
पूल सा कोमल घदन भी  
हो रहा था घञ्ज सा अथ ।  
राजता था धर्म तन पर,  
या विहंसता धर्म भी अथ ॥

कॉपता था फाल अथ  
अति दूर उसने शान्त होकर ।  
पृष्ठ पर तूष्णार शरमय,  
व्योम म था केतु चचल ॥  
थ बढ़े जाते दनादन  
यामिनी में वे छत्रप्र ।  
दग्धती जिनको सतत थी  
दुर्ग की भीषण शतप्री ॥

चाहती थी यदि मिले  
आशा अनी इनको मुला हूँ ।  
जाति के इन पावकों को  
राग्य की टरी बना हूँ ॥

ना रहे थ थ बढ़  
दा गंध की जागौर लेने ।  
भेद देकर दुर्ग का निप  
देरा का सम्मान पाने ॥  
भाँ / १५



पान के लघु मान पर ही  
मान वीरों का मिटाने।  
दुर्ग की रण-मंत्रणा सब  
रात्रि में रिपु को बताने ॥

शीशदानी के हृदय पर  
वश का गोक्षा गिराकर,  
चाहते थे राज्य करना  
शीघ्र रानी को मिटाकर ॥

हाय ! अपने जाति का अथ  
मान मिटाने जा रहा है।  
हाय ! अपने वश का सब  
ज्ञान मिटने जा रहा है ॥

आज मन्दिर के सुयश का  
गान मिटने जा रहा है।  
आज गीत का विमलतम  
ज्ञान मिटने जा रहा है ॥

आज फिर राठौर की है  
मिट रही सज्जल निशानी।  
आज धुलने जा रही  
चिन्तौर की पावन कहानी ॥

जा रही है आज मिटने  
भूमि से नारीत्व माला।  
जा रही है आज जलने  
माष्ट-सर पर पुत्र-वशाळा ॥

आन होने जा रही है  
अशुचि सुरसरि नीर धारा।  
आन लींचा जायगा निज  
का पावन सहारा ॥

आज हिन्दू हा मिटाता  
इस घरा से हिन्दुआनी।  
आ मुसलिम ही मिटाता  
इस अषनि से मुसलमानी ॥

इस तरह निज पूर्वजों की  
याणियाँ धिक्कारती थी।  
दिव्य ज्वाला में जली वे  
नारियाँ फुफकारवा थी ॥

शीघ्र ही निरा में शृङ्खनी  
अरिशिविर के पास पहुँचे।  
सन्तरी भी हाथ में ले  
असि गरनकर पास पहुँचे ॥

पीरअलि घोला विनय से  
काँपवा था गाव धर धर।  
कायरों दे शीरा से भी  
चू रहा था स्वेद तर तर ॥

जा सुनाया शिविर में बह  
पीरअलि आया मिलन को।  
दुग का सय भेद देने  
आ गया है अरि दमन को ॥

घात सुनकर शिविर रक्त  
हो गया गद्गद उसी क्षण ।  
पा गया अपना अभीप्सित  
पिल उठा सरसिज सदृश मन ॥

वीर रक्त ने त्वरित ही  
वृत्त नायक को सुनाया ।  
हो उठा गद्गद मुदित मन  
शीघ्र लाने को पठाया ॥

आ गए दोनों कृतघ्नी  
रोज ने उठकर विठाया ।  
मान पा हँस पान देकर  
दिव्य भोजन भी कराया ॥

घात आगे की चलो फिर  
रोज ने पूछा विनय से ।  
फर रही रानी भला क्या  
दुर्ग में रक्षना हृदय से !

प्रश्न यह नभ ने भयातुर  
रात्रि का रोकर सुनाया ।  
पारशक्ति ने दुर्ग का सब  
भेद क्षण में कह सुनाया ॥

“कौन हैं जो आप के ये  
साथ आए हैं यहाँ पर !  
काम इनको है मिला क्या  
दुर्ग में रण में वहाँ पर !

“नाम इनका दूलहा जू  
दुर्ग-पाटक हाथ में है।  
पाँच तोपें काल सा  
विकराल इनके साथ में है ॥

‘बोलिए सिद्धकी सुलेगी,  
बोलिए पाटक सुजगा ?  
दुर्ग म घुस जाय सेना  
जो फहें वह पथ मिलेगा ?

हैं प्रभो ! ये मित्र मर  
शीघ्र पाटक खाल देंग  
आपके व्याकुल हृदय में  
विदस अमृत घोल देंगे ॥

रोज ने छण में वर्षा पर  
शुद्ध गद्दा जल मँगाया।  
दूलहाजू पीरअलि से  
शापय का लेला सुनाया।

‘द्विन्दु है सौगन्ध गाना  
हाथ में ले गङ्ग-पानी।  
मैं इसी को मानता हूँ  
बात की पावन निशानी ॥

बर्षने थर थर लगे पर  
दूलहाजू के इसी छण।  
बर्षने थर थर लगा अब  
परिदहा का प्रीय से तन ॥

बुद्धि पर परदा पड़ा था  
गाँव की जागीर सुनकर ।  
भाग्य भी खुल जायगा अब  
स्वार्थ को यह बात सुनकर ॥

वेश द्रोही ने त्वरित वह  
ले लिया शुभ गङ्ग पानी ।  
रो लठी निज मातृ उर में  
मूँदकर दृग हिन्दुआनी ॥

गरजकर धिक्कारती चण  
पूषजों की थी कहानी ।  
नीच के दुष्कर्म पर थी  
कपिली रानी भवानी ॥

पान के लघु मान पर रे  
नीच । तूने मान खोया ।  
गाँव की जागीर पर  
निज देश का सम्मान धोया ॥

लौट आए रात में ही  
दिव्य नगरी सो रही थी ।  
व्योम की उडुगण प्रभा में  
मप्रणा भी हो रही थी ॥



पन्द्रहवीं हुंकार



जय भूतनाथ, जय मद्रमूर्ति,  
जय कालमूर्ति, जय-जय कराल ।  
जय त्रय त्रिमूर्ति, जय शक्ति रूप,  
जय सौंय-पाल, जय-जय विशाल ॥

जय-जय कुमार, जय-जय उदार,  
जय बाहुलेय जय मुण्डहार ।  
जय एकदन्त, जय विघ्नराज,  
जय कार्तिकेय, जय दण्डधार ॥

जय अट्टहास, जय कालजर,  
जय नीलफण्ट, जय कामदेव ।  
जय अत्रयोनि जय नाभिजम  
जय कमलयोनि, जय आदिदेव ॥

थी रात पहर भर शीत चली  
छा गया अवनि पर अघकार ।  
रो उठी प्रकृति निज बेप देर  
या कहीं न जग का धार-धार ॥

तम हो जाया नीरवता को  
छूय कैंपा रहा था जयनिनाद ।  
शोकापुल दसो विराग्यों को  
या जगा रहा गडगडनाद ॥



माँ विश्वकारिणी ! एक धार  
जग ता कण-कण दमदमा उठे ।  
गोरे मुखों की माला से  
तेरो प्रीवा चमचमा उठे ॥

इसमें है जग का मान भरा,  
है गीता का शुचि ज्ञान भरा ।  
माता ! तेरे क्रोधानल में  
है वीरों का सम्मान भरा ॥

लहरवा इससे सप्त सिंधु  
चमचमा रहा है आसमान ।  
इससे ही हिमनग का विराल  
पावन किरीट है भासमान ॥

माता ! तेरी ही ज्ञान-ज्योति  
भासित करती जग भाल भाल ।  
तेरी लाला में लहराता  
है रवि का आनन लाल लाल ॥

इस भाँति दुग में होता था  
आषाहन रण मतधाली का ।  
पावन-सुहास भी फैल गया  
उपा के गृह की लाली का ॥

उस ओर शिबिर से निकल पड़ी  
अरि की सेना हथियार लिए ।  
असि-कुन्त-सीद्धण हथियार लिए  
त.पों की अगम फतार लिए ॥

ऊपा ने धौंगड़ाई लेकर  
नभ में हँस कुकुम फेर दिया ।  
इस धार तुमुल कोलाहल से  
गोरों ने गढ़ को घर लिया ॥

क्षण भीमकाय तोपें अरि की  
लग गढ़ दुर्ग की छाती पर ।  
राव राव गोले भी बरस पड़े  
जननी की शुचिता धाती पर ॥

हर हर शकर का जयनिनाद  
गढ़ के फण-फण में गूँज उठा ।  
मन्दिर क घण्टों के रव से  
नभ का प्राण भी गूँज उठा ॥

देश द्रोहा जू ने  
इतने में फाटक चा ग्याला ।  
युग के पावन सिंहासन पर  
गिर पड़ा अघानक अरि गोला ॥

इस धीप औरधा फाटक पर  
मुन्दर पहुँची लखवार लिए ।  
कपनी दूल्हा जू के सम्मुख  
गरना स्वदेश - सत्कार लिए ॥

उस नीप जाति द्रोहा के इस  
विरवासपाठ पर सरज उठी ।  
बादर अरि की सलकारों पर  
यह सिंहाद सी गरज उठी ॥

ओ रे विद्रोही दूल्हा जू !  
रिपु दल से तू क्या पावेगा ?  
तेरे उर का भी गरम रक्त  
अरि कुन्तों पर सहारनेगा ॥

जिस रानी ने विश्वास किया  
तू ने उसका सिर काट लिया !  
रे नीच फलफो ! तू ने ही  
माता का शोणित चाट लिया ॥

तू ने कलक का टीका अथ  
माँ के मस्तक पर लगा दिया ।  
अथ से स्वतंत्रता देबी को  
हम सयसे फोसों भगा दिया ॥

सुन्दर की वह प्यासी नागिन  
अगार सहरय दमदमा बठी ।  
उस नीच फूलझी का शोणित  
पाने को अथ चमचमा छठी ॥

सुन्दर आगे कुछ कह न सकी  
सिंहनी सहरा वह दूट पड़ी ।  
एकाकी दूल्हा जू पर वह  
'रानी की जय' कह दूट पड़ी ॥

दूल्हा जू ने करके छड़ से  
सलवार धार को रोक दिया ।  
वो खण्ड हो गया चन्द्रहास,  
सुन्दर को छड़ पर रोक दिया ॥

इस धीच आ गण अरि-सैनिक  
सभ टूट पड़े उस नारी पर ।  
सो गयो शीघ्र सुन्दर लड़कर  
वैरी की गरम दुधारा पर ॥

अरि की सेना कटती मरती  
घड़ती गड़ भीतर चली गइ ।  
अप हन्त ! हमारो स्वतंत्रता  
अपने बशान से छला गइ ॥

पग पग के हित उस दुग मध्य  
सिर का धा अगम पहाड़ बना ।  
गड़ के भारतक पर तोपों के  
धुँए का विशाद वितान बना ॥

तोपें करता धी धायें धायें  
चल रहा गोलियाँ सन सन, सन ।  
फूँकर अस्ति गिरता धी भू पर  
रव होवा था सन, सन, सन, सन ॥

मंझा मकोर गजन बम से  
हा उठा दुग हगमग हगमग ।  
छुट गया धैर्य धीरज का भा  
प्रकारह हिल रहा था हग, हग ॥

हिल चगे घरा, हिल उठा गजन  
अयनी पर यह भूडोल न था ।  
हो गण धूल से धूमिल नभ  
पर अतक हा दिवाल न था ॥

उठ गई वेदिका, उड़ा अजिर,  
मिट गया स्वर्णमय सिंहासन ।  
फाँपा अनन्त, कँप उठी मही,  
हगमगा उठा हर का आसन ॥

गढ़ के फाटक भी चूर हुए  
जल उठा नगर का ठाट-घाट ।  
रानी के सैनिक पाट रहे  
धे भू को अरि सिर काट काट ॥

गढ़ की छत से घन गरज तोप  
छाए लगी दगलने प्रयत्न आग ।  
जिसकी बाला से जल भुनकर  
रिपु चले दुर्ग से शीघ्र भाग ॥

इस बीच वहाँ पशुंघा रदुधर्त  
लेकर नूतन सेना अपार ।  
अरि की सेना फिर लौट पड़ी  
जिसका न कहीं या आर पार ॥

सृण दूट पड़े वे सब मिलकर  
गढ़ का वैभव हर लेने को ।  
रानी के सैनिक जूझ पड़े  
जननी का श्रेण भर देने को ॥

रण की गङ्गा में उतर पड़े  
वे यरा की तरणो रेने को ।  
रिपु-दल का हर शोणित लेकर  
जननी का शुचि पग धोने को ॥

यह चला रक्त का परनाला  
व रों ने रण-होली खेली ।  
'रानी की जय, रानी की जय'  
यह गूँच उठा क्षण में बोली ॥

राना अरि-गर्दन काट-काट  
उड़ रही पवन में फर, फर, फर ।  
सपसप करता अस्ति निहा से  
शोणित घड़ता था तर, तर, तर ॥

घर-वानि पवन को चीर-चीर  
पंचल गति से लहराता था ।  
पलकों के गिरते गिरते ही  
अरि-मुण्डों पर चढ़ जाता था ॥

कोई था ऐसा शत्रु नहीं  
जिसने न सामने आता था ।  
कोई था ऐसा स्थान नहीं  
जिसका न हृदय धरोता था ॥

'रानी आई' यह कहने को  
जय वरु अरि-जिहा हिलती थी ।  
सप वरु रानी ही अस्ति चमचम  
अरि-शरटों से जा मिलती थी ॥

रानी के भीषण रण से भी  
यह अरि-दल घुटा आता था ।  
गड के मलय को जला जला  
दिशु समय पड़ता आता था ॥

जल उठा अस्तयल, जला भवन,  
जल उठा देश का स्वाभिमान।  
जल उठा आर्यजन का युग का  
सचित गढ़ का गौरव निशान ॥

जल उठी दुकानें, जले घाम,  
जल उठे मुहल्ले एक साथ।  
उस महाविकट धररता में  
हो गया आज जौहर अनाथ ॥

लपटें नभ को धूने बढती  
फहती अम्यर तू भी जल जा।  
जय कलित कीवें कौंसो-ललाम  
जल रही साथ तू भी जल जा ॥

किसलिये टिका है निराधार  
ओ नीलवर्ण ! मुककर आ जा।  
या प्रलयसदृश ज्वाला बनकर  
रिपुदल की छाती पर छा जा ॥

गढ़ की तोपें बौरासन में  
यी धायें धायेंकर गरज रही।  
हर के जलते क्रोधानल के  
अगार अधनि पर धरस रही ॥

या भीमनाद से गगन पूर्ण,  
सब धधिर दिशारें कँप हठी।  
धरती के रज-कण धधक उठे  
धरि को धधरता धँप उठी ॥

क्षय महामृत्यु गढ़ से पतरी  
अरि का जीवन भी लेने को ।  
सगर में माता द पग पर  
जाउन अर्पित कर इन का ॥

विचराल काल का ताडव था  
श रहा अवनत के अचल पर ।  
अरि का शण्डित लहराता था  
शृज-शृण के रनित दल-दल पर ॥

नव महामान्ति का आवाहन  
सापों को गडगड़ करती थी ।  
विप्लव की नाटकशाला का  
निमाण विहँसकर करती थी ॥

बल रहा गोनियाँ थी सन सन  
गाने हुन्त थ घायँ घायँ ।  
या दानवता का अट्टहास,  
मानवता करती साँस साँस ॥

दाना इन के गाने पन्त  
हुन्ता चिनगाथ पमठ पमठ ।  
विचराल काल को लान आम  
सपनवा रगी था इनह इनक ॥

एज शतग नम गुणन करन  
पर भूय सदार था चहुना ।  
इस धर शशों का नरपना  
कपला नम पून बहना ॥  
माँ १६



पापाण चूर्ण हो कर्य होते  
गोलों की रण पुफकारों से ।  
सड़ते रजमय संताप लिए  
गद के पापाण दरारों से ॥

अरि दल के क्रोध हुताशन की  
निर्दयता भी ललकार बली ।  
यह चले श्रस्त सनचास पवन  
धीत्कार मच गया गली गली ॥

पहले गद का आसन चमका  
रण में ही फिर चमचमा उठा ।  
नभ की छाती पर ज्वालाभय  
था धूम्रकेतु दमदमा उठा ॥

हो गद पवन की मथर गति  
यह चला दुःख का भार लिए ।  
अपनी मौसी की सुक्या का  
उर म था व्यथा अपार लिए ॥

कोलाहल पर कोलाहल सुन  
चात्कारों दीन अनार्थों का ।  
रानी का हृदय फटा जाता  
बाणी सुन लुंज निहार्थों की ॥

गद के ऊपर यह चढ़कर थी  
प्राधीर-दुदशा देस रही ।  
क्रिस भौंति प्रलय का राय हट  
वह मार्ग ध्ययित थी देख रही ॥

सहसा रानी ने देख लिया  
जल रहा पुस्तकालय धू धू ।  
उस सञ्चित निधि को ही खाकर  
है भाग विहँसती नभ धू धू ॥

जल रही हाय ! दृगमग पग की  
अन्धों की लकुटी गीता है ।  
नव ज्ञान ज्योतिमय वद मय  
गिरिधर की कथा पुनाता है ॥

जल रहे हमार कपिल, व्यास  
जल रही भीष्म की शर शय्या ।  
जल रहा शास्त्र का अमल पय,  
जल रही बामुकी पन शय्या ॥

जल रहा विरय का प्रसूय,  
जल रहा ज्ञान का पुण्य धाम ।  
जल रहे स्वर्ग के मुगम मार्ग  
साक्षेय सत्त भगवान राम ॥

यह जला अमृतपन जला धाम  
वन सफटा है फिर राव भवन ।  
भद्रायगोप गढ़ में फिर से  
आ सफटा है खेतन धायन ॥

भर सफती पर में अन्नराशि  
बस सफती है पुर हाट, गली ।  
हो सफत है जन जन प्रदुरित  
हैस सफती है नव गला गला ॥

पर जले वेद पावन पुराण  
जिनकी गरिमा है लाल लाल ।  
ये शास्त्र, षाड्य, इतिहास मन्य  
जो हस्तलिखित थे शुधि विशाल ॥

प्रतिलिपियाँ करने को जिनकी  
अपान्य देश के नौजवान,  
आते थे, शीश मुक़ाते थे,  
करते थे जिनका यशोगान ॥

इन वेद शास्त्र के निमाषा  
सदयुद्धि युक्त आलोक घाम,  
अथ कहीं मिलेंगे वे ऋषिवर  
सद्गर्भ कर्ममय यति ललाम !

अथ कहीं मिलें जमदग्नि आय  
गौतम, यशिष्ठ, कश्यप महान् ?  
देवर्षि, मृगज, शृङ्गी, अगस्त्य,  
पाणिनी, कपिल साधक ललाम ?

अथ कौन करेगा यशोगान  
आजादी के दोषानों का ?  
अथ कौन कहेगा मौन मौन  
आत्मान समर मन्त्रों का

अथ कौन कहेगा चुपके से  
सन्देश पद्मिनी रानी का ?  
अथ कहीं मिलेगा मौन मन्त्र  
पद्मा की वार कदानी का ?

आहत मानस में जाग उठ  
उद्गार महारुद्राणी का ।  
तन - रोम रोम फिर कड़क उठा  
उस समर भवाना रानी का ।

आली मुन्दर से वह बोली  
वाणी से विजली कड़क पड़ी ।  
आरा। सर पर अनुभाव परी  
सगीत सुनाती धिरक पड़ी ॥

मुन्दर ! मुन्दर ! मेरी प्यारी  
माँसी की है दुर्गति ऐसी ।  
यह देह धनी जिसकी रज से  
उस पर अरि की दुर्मति ऐसी ॥

हे कौप रहा गड़का फण - फण  
येरी के अत्याचारों से ।  
हे विकल दिराओं के दिग्गज  
उसके अरि की पुफकारों से ॥

तो गरुड़ अमी बन जाना है  
येरी का यह दिव्यलाना है ।  
यह वही वीरवर देरा अमी,  
जिसका देसतिया बाना है ॥

जसके भांड का रग लाल  
रग धरन में दीवाना है ।  
अप भी ललकार रहा रग में  
बिजियी एविय बाना है ॥

फिर से रानी के मानस में  
भस्मित प्रथों की आग जगी ।  
उस वीर हृदय को कँपा कँपा,  
शक्ति की नव करुणापाग जगी ॥

वह वीर हृदय जो पुत्र शोक,  
पति-शोक से न भी कँपा था,  
जिसने संगर में विहँस विहँस  
अरि सिर से भू को नापा था ॥

जिसको न कँपा तक पाया था  
रण महाप्रलय घनघास पवन ।  
जो हृदय कमल सम खिलता था  
सुनकर गोली की सनन, सनन ॥

वह वीर हृदय भी कँप उठा  
बलदल के कोमल पत्ते सम ।  
रो उठी बिलखकर महारानी  
नादान दुधमुहँ घच्चे सम ॥

रो उठीं नवो निधियाँ मानो,  
थी तीर्थराज विमला रोई ।  
आनन्दपुरी, जगदीशपुरी,  
कमलासन पर कमला रोई ॥

अखिमा रोई, गरिमा रोई,  
थी विन्ध्यवासिनी भी रोई ।  
करुणा रोई, शरुणा रोई,  
थो विघ्नधारिणी भी रोई ॥

बह रही सतत अविरल गति से  
आँसू की धारा थी मर मर।  
उन पर का रजित चीनांशुक  
हो गया पसीने से तर तर ॥

इस घोष यहाँ सिरदानो ने  
आकर नूतन सदेश दिया।  
हा गया शान्ति का अन्त मनो  
चसने रण का उपदेश दिया ॥

जननी । रणधीर गीतवाँ ने  
द्वितनों को लड़ना सिखा दिया।  
घनगरज तोष की मारों से  
द्वितनों को मरना सिखा दिया ॥

लेकिन येषारा क्या करता  
एकाकी रिपु की मारों में।  
अयायो का पुफकारों म  
अरि-दन के तारे धारों में ॥

लग गइ हृदय में रिपु गोली  
सो गए भूमि के अचल पर।  
लिय दी मान्त ने धार - क्या  
तर-तर के कम्पित दल दल पर ॥

पद सुनकर रानी उड़ल पड़ी  
सिंहिनी सदरा बह तड़प लठी।  
अरि-हृदय-रक्त की प्यासी - अति  
सकर बिजली सम कड़क लठी ॥

युग अघर अघानक फड़क उठे  
क्रोधामिनि जगी उस रानी की ।  
“भाऊ को खॉ की तोपें दो”  
यह आह्ला मिली भवानी की ॥

बल पड़े बेशमुख चुपके से  
सिर पर आशा का भार लिये ।  
मुख पर विजयी उल्लास लिये  
उरमं स्वदेश का प्यार लिये ॥

था राजभवन का दक्षस्थल  
अब भी संगर का दीवाना ।  
जुट गये धीर सरदार पहन  
तन पर फिर केसरिया बाना ॥

रानी को आशीर्वाद मिला  
था रणचण्डी सहरानी का ।  
क्षुण्ण मौन-मौन आयाहन था  
शिवदूती, सती, भवानी का ॥

वह समर धीच जा बिहँस उठी  
उर में थी व्यथा अपार भरी ।  
फम्पित अघरों से निकल पड़ी  
कोमल बाणी सन्ताप भरी ॥

“धीरों ! जो आप सभी ने अब  
है अरि को लड़ना सिखा ।  
हँस समर सिन्धु पर सेतु बना  
दुस्तर पर चढ़ना सिखा दिया ॥

प्यारी माँसी का रस्ता का  
 यारों ने सिर की माला से।  
 घनिकों ने द्रव्य निधानों से,  
 दिनों ने दर की ज्वाला से ॥  
 जननों ने घर सपूतों से,  
 सतियों ने अबल सुहागों से।  
 सलनाभा ने गढ़-रक्षा की  
 निज राग-रग के त्यागों से ॥

फिर भी जय लक्ष्मी दूर अभी,  
 अथ होगा बेड़ा पार नहीं।  
 है विधि हम सबके अभी धाम  
 माँसी का है उद्धार नहीं।

इसलिये गुप्त पथ से गढ़ के  
 सपनों अथ बचकर जाना है।  
 सध्या के धूमिल आँसुओं में  
 छिपकर अथ प्राण पचाना है ॥

मेरे इस तन को जीत जी  
 अरि स्पर्श नहीं कर सक्ता है।  
 मम पद की धूल निरानी पर  
 पद भी न कमी रख सक्ता है ॥

अथ ण्ड मार्ग ही है मुझको  
 इस तन तरणी के राने का।  
 जननों का शरण भर देने का,  
 पितरों का तपज कराने का ॥



है भरा हुआ बारूदों से  
इस धीर किले का वनस्थल ।  
जिससे रिपु दल की छाती में  
घडक्न होती रहती प्रतिफल ॥

अथ जाकर उसमें आग लगा  
में स्वयं मरम हो जाऊँगी ।  
युग के विछुड़े निज पितरों के  
पद पकज में मिल जाऊँगी ॥

सुनकर यह धर्म पुरोहित ने  
उपदेश सुनाया रानी को ।  
नैराश्रय-नींद से जगा दिया  
माँसी-गढ़ की रुद्राणी को ॥

जिसने स्वराज की घेदी पर  
संकल्प किया मिट जाने का ।  
इस महायज्ञ में हँसते ही  
साकल्य सुरभि बन जाने का ॥

यह समर भवानी सुना रही  
है कायरता की बात यहाँ ।  
इससे धड़कर यदुन-दन को  
पहुँचेगा अथ आपात कहाँ !

गीता-मुकुन्द का अथ ऐसा  
हो सकता है अपमान कहाँ ।  
इस मातृ भूमि के गौरव का  
होगा फिर से सम्मान कहाँ !

सिर नीचा किये महाराना  
सुन रही घात थी ब्राम्हण की।  
वन रोम रोम था फड़क रहा  
सह रही घात थी ब्राम्हण की ॥

अथ भा अनीकिनी है अपार,  
पा सकती है माँ मुक्ति अभी ।  
इस कठिन निराशा के तम में  
है विहँस रही नव युक्ति अभी ॥

है अभी पेशवा की सेना  
कालपी नगर में नथ विशाल ।  
जिससे रणचण्डी की फिर से  
हो सकती है सज्जा कराल ॥

यदि विजित हो गई है दिल्ली,  
है कानपूर का हुआ पवन ।  
तब भी जनता की आशा का  
फर सकता है अरि नहीं इनन ॥

है विध्य अथथ स्वातंत्रपूर्ण  
है महाराष्ट्र दमदमा रहा ।  
जिनका अनुलित पुरुषार्थ आप  
नम पर है अथ चमचमा रहा ॥

इसलिये महारानी गढ़ से  
पोरबी रात्रु सेना निकलें ।  
जिनका अनुपम पुरुषार्थ देख  
कावपी हृदय रण का मचने ॥

षट् धम पिता का महामंत्र  
बल फूँक चला था कण कण में ।  
जग उठी धरा, जग उठा गगन,  
जग गया शौर्य जन मन-मन में ॥

रानी की आँखों के सम्मुख  
था कुहसेत्र चमचमा रहा ।  
स्यन्दन पर बैठा रुद्र रूप  
अर्जून का था दम दमा रहा ॥

ये बने सारथी स्वय कृष्ण  
रथ अनिल -भीष लहरात था ।  
नव रुधिर कपिध्वज अम्बर में  
फर, फर, फर, फर फहराता था ॥

रानी की भी धाँहें फड़की,  
कर में असि चमचम चमक उठी ।  
सन्ध्या की कवरी में गुँथी  
मुक्ता मालायें दमक उठी ॥



सोलहवीं हुंकार



हृदय से छली जा रही थी रवानो,  
किले से चली जा रही थी भवाना ।

समय ही प्रवल है किसी ने न जाना,  
वही है हँसता, वही है रुलाता ।  
महामेरु को नीर तल पर मुलाकर  
जलधि के हृदय पर अचल है बनाता ॥  
उसी की कथा कह रही सिंधु लहरें,  
उसी का कृपा पर घरा डोलता है ।  
वही है हृदय में बसा प्राण बनकर,  
उसी की दया पर गिरा धोलता है ॥

सितारों की आँखों से नभ रो रहा था  
निरा कह रही थी निरा से कदानी ।  
हृदय से छली जा रहा थी रवाना  
किले से चली जा रहा है भवाना ॥

अगम पथ बिसरकर परत घूमता था  
अगम भाग बदर पर पवन था बनाता ।  
समामण्डि तमिन्ना का घर बंधकर था  
नदी बन, पहाड़ों में दीपक दिगाता ॥

जहाँ राजरानी वहीं गति विजय की  
कहानी सुनाती बढ़ी जा रही थी ।  
पहाड़ों की छाती कँपाती थराथर  
अभय हो शिगर पर चढ़ी जा रही थी ॥

किला जल रहा था, प्रभा रो रही थी,  
मिटी जा रही थी विजय की निशानी ।  
हृदय से छली जा रही थी रवानी  
किले से चली जा रही थी भवानी ॥

कुशासन या तम का, हुताशन का आसन  
घरा पर, पवन पर जमा जा रहा था ।  
लिये धूम्र सेना निगलने गगन को  
अनल-ज्वाल हँसता बढ़ा जा रहा था ॥

मला कौन रोकेगा रणचण्डिका को,  
जो चाहे तो घट शीघ्र जग को हिला दे ।  
घरा को गगन से, गगन को घरा से,  
पलक मारते ही रगड़ कर मिला दे ॥

किले को मनाती तिमिर को कँपाती,  
चली जा रहा थी निडर राजरानी ।  
हृदय से छली जा रही थी रवानी,  
किले में चली जा रही थी भवानी ॥

गिरे को उठाती, मने को फुमाती,  
अह को घनाती, चला जा रही थी ।  
था कर में दुधारां, थी दर म भवानी,  
जवानी नधाती बढ़ी जा रहा थी ॥

धरे हाथ, शायक से भरि सिर उभाती  
कपड़ों की साड़ी चढ़ी जा रही थी।  
निराशा के बादल से आशा' निकलकर  
यही गीत गाती चली आ रही थी ॥

निहर हो समर में लड़ो वीर। तब तक  
धरा पर है जब तक त्रिपथगा का पानी।  
हृदय से छली जा रही थी रबानी,  
किले से चली जा रही थी भवानी ॥

त्रिप के लिए धन हुताशन धनी थी,  
धनी बाँधबनल थी साल बाहिनी में।  
सधन धन पटा में प्रसर-वायु थी बह,  
नी थी प्रभा पुत्र तम बाहिनी में ॥  
पहड़ों की चोटी की चोटी बनाकर  
धरा पर मुलाने में भेदा बना थी।  
चली जा रही थी कुराँ कंटकों में,  
पहाड़ा कटारों की मजड़ी धनी थी ॥

पना था किसी को कि काँटा प हँसकर,  
भला अथ चलंगी य मजसी की रानों ?  
हृदय से छली जा रही थी रबानी,  
चिन्ने से चली जा रही थी भवानी ॥

गगन पादता था, धरा पर स्तरकर  
सजन नेत्र से धूम ले युग्म पद को।  
सधन धन पटा में तद्वि पादती थी  
गन से मिला ले भवानी के रदको ॥  
मई०/१७



रुचिर चन्द्रिका चाहतो थी कि संस्र  
 भगुर हास रानी के सालोक मुख से ।  
 धतासी चली जा रही थी जगत को,  
 कि माता की घेड़ी कटेगी न मुख से ॥

सिखाती चली जा रही थी तिमिर में,  
 कि कैसे घितानी है स्वर्णिम जबानी ।  
 हृदय से छलो जा रही थी खानी,  
 किले से चली जा रही थी भवानी ॥

जो अड़ते थे घोड़े कहीं साधियों के,  
 सवारों को ठुहड़ी अगर कॉपती थी ।  
 तो रानी विहँसकर थी घोड़ा बड़ाती,  
 पलक मारते विघ्न को नापती थी ॥

धताती थी पथ वह तिमिर को घटा में  
 छटा थी दिखाती वह असि के जहर को ।  
 सुनाती थी जयघोस में वह कहनी  
 कुमारी के खप्पर के शोणित लहर की ॥

लगा दो द्विभालय के ऊँचे शिखर पर,  
 अमर शौर्य को चमचमाते निशानी ।  
 हृदय से छली जा रही थी खानी,  
 किले से चली जा रही थी भवानी में ॥

बँधा पीठ पर था तनय पीत पट से,  
 जिसे पूज्य राजा ने दत्तक लिया था ।  
 चमकता चमाचग मुकुट शाश पर था  
 जिसे पूर्वजों ने सुशोभित किया था ॥

बढ़ी जा रही थी दनादन विपिन में,  
चढ़ी जा रही थी तिमिर को फँपाती ।  
था थर थर विकम्पित महाकाल मय से  
विजय की पताका थी नम में चढ़ाती ॥

थची वृद्ध भारत को लडुटी बही थी,  
उसे देखती थी चकित हिन्दुधानी ।  
हृदय से छली जा रही थी रबानी ।  
किले से चली जा रही थी भवानी ॥

लिये बाहिना आ के षोकर ने सत्क्षण  
विपिन में ही रानी को ललकार घेरा ।  
उपर रात्रि की चित्रकारी पर नम म  
उपा ने भी हँसकर के भादू था फरा ॥  
लड़े धोर धारों से ले-लेकर भाले,  
पला गालियाँ सन-सनाती हवा म ।  
किसा का पता न था जावन-मरण का  
विपेला गरल उड़ रहा था हवा में ॥

गगन चाहता था घरा से बताना कि,  
रानी नहीं है, छ रण म भवानी ।  
हृदय से छला जा रही थी रपानी,  
हिने ने चला जा रहा थी भवानी ॥

भिय हाथ म राखपाती मुजगिन  
भयाना लो रातो समर पर रही थी ।  
तो रीता था गणर गठारासिदा का  
उसे शत्रु क रण मे भर रहा थी ॥

दिखाई पड़ा सामने दुष्ट दोकर ।  
जो छिपकर चलाता सनासन था गोली ।  
पलक मारते उसके दर के रुधिर से  
भमकती दुधारी थी रानी ने घोली ॥

भगी शत्रु सेना यही शब्द कहती,  
कि रानी नहीं है, है यम की निशानी ।  
हृदय से छली जा रही थी रवाना,  
किले से चली जा रही थी भवानी ॥

यों जीवन की बाजी लगाकर भवानी  
प्रमल वाहिनी पर विजय पा गई थी ।  
मगन था गगन, जग छठी भूमि प्यारी,  
धरा से गगन तक प्रभा छा गई थी ॥

पिना अन्न अल के निशा भर में वह पथ  
था रानी ने सौ मील का तय किया था ।  
विहग-शृन्द गाते विजय गान सुन्दर  
मलय वायु ने स्वेद फण हर लिया था ॥

प्रहर बात में भी सतम् जल रही थी,  
अमर शीरे की अमघमाती निशानी ।  
हृदय से छली जा रही थी रवानी,  
किले से चली जा रही थी भवानी ॥



सत्रहवीं हुंकार



तिमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से  
लिखी जा रही थी समर की कहानी ॥

उपर द्योम में मशरूमा हो रही थी,  
इपर राजता हर्ष का था तराना ।  
यही है समय का सुनहला सघेरा  
जि पल में नूँसाना व पल में ग्लाना ॥

नहीं जी सफोगे, जगत में है ग्राई  
जिसे तुम समझत हो धैमव का पलना ।  
नहीं जानते हो समय की मणो में  
दिपा फाल है फाटता रूप दलना ॥

यही सोचती थी प्रयासिन बह कोरिन,  
लगा हूँ गगन भाल में मैं निरानो ।  
तिमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से  
लिखी जा रही थी समर की कहानी ॥

निरुत्तर भवन से गढ़ी सोचती थी,  
बषा हूँ मयानी का अनमोल जीवन ।  
पिता हूँ पदे गन्ध शैष्या व चिन्तित  
दुग्गो बलान्त भारत को अथ सजीवन ॥

घजे दुन्दुभी आय-जननो के घर में,  
जले दीप,विहँसे चमाचम दिवाली ।  
तिमिर के हृदय पर गिरे घञ्ज क्षण में  
प्रभा शांति राजे घरा पर निराली ॥

मिले अशुमाली को गङ्गा का शीतल  
महापुरायदायक-सुगति घाम पानी ।  
तिमिरमय शिल पर हृदय के रुधिर से  
लिखी जा रही थी समर की कहानी ॥

गगन रो रहा है, घरा रो रही है,  
मलय वायु कहाता व्यथा भार चलकर ।  
हृदय कपिता है अचल का थराथर  
तिमिर राजता है एसुम को मसलकर ॥

नहीं खुल रहा है लताओं का अचल,  
नहीं बोलते हैं भ्रमर फूल-दल पर ।  
कैसे मैं सुनाऊँ समय की कहानी,  
कठण गीत गाती निरा भूमि-तल पर ।

घहा जा रहा मालुभू के हगों से  
व्यथा भार से क्लान्त-अविराम पानी  
तिमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से  
लिखी जा रही थी समर की कहानी ॥

बठा ली फरों में चमाचम भुजगिन  
चमकने लगा पार्श्व में धर्म प्यारा ।  
घनायी वही वेप रानी का जो था  
समर में घना घञ्ज का-सा निराजा ॥

उड़लकर चढ़ी धाति पर जय मनावी,  
मुक्तावी गगन को धरा पर विहँसकर ।  
कँपाती शिखर को, खिलाती गरल को  
अमर दल को धाती कँपाती डपटकर ॥

मुके शत्रु कोरिन पे रानी समझकर  
पवन के हृदय में जगी रण-राना ।  
विमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से  
लिखी जा रही थी समर की कहानी ॥

इधर था विजय, छुए उधर था विजय, छुए  
घमकते थे गोले प्रपल-वाहिनी में ।  
उधर व्योम म कड़कडाती थी विजली,  
बढ़ी व्यग्रता थी जलद वाहिनी में ॥  
धरा का बसन खून से रँग गया था  
मुखाती निसे थी प्रणय-रङ्ग ज्वाला  
भरा जा रहा था कपालों का सप्पर,  
परो थी रही शत्रु की मुण्ड माला ॥

निशा में धिरक नाचती थी विशाग्नि  
गगन से पला छा रही था भवाना ।  
विमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से  
लिखी जा रहा था समर का पट्टाना ॥

धरा पर कभी क्या हुआ है य सम्भय  
बचेला पना भाव का पाइता है ।  
नदी यह कभी भी मुना ही गया है,  
बचेला ही सोदा शिखा छोड़ता है ॥



मला कब तलफ एक मरकारो लड़ती  
प्रमल शत्रु की बाढ़ सी बाहिनी से ।  
पकड़ ली गई जीते जो वह समर में  
गरजती हुई शत्रु की बाहिनी से ॥

मनाई गई अरि-शिबिर में दिवाली  
पकड़ ली गई आज भौंसी की रानी ।  
तिमिरमय शीला पर हृदय के रुधिर से  
लिखो जा रही थी समर की कहानी ॥

य सैनिक सभी घात करते यही थे,  
धरा पर वे फूले नहीं थे समाते ।  
कभी ये हवा में वे टोपी उड़ाते,  
कभी नाचकर थे विजय-गीत गाते ॥

न रिपु-दल तनिक जान पाया अभी तक  
कि रानी नहीं है, है कोरिन भवानी ।  
जो रानी का जीवन बचाने में हंसकर  
चली थी चढ़ाने उमड़ती जवानी ॥

द्विप आइ से दूलहाजू ने घताया  
कि कोरिन है, समझो न भौंसी की रानी ।  
तिमिरमय शीला पर हृदय के रुधिर से  
लिखो जा रही थी समर की कहानी ॥

लगी आग कोरिन के धन में यह सुनकर  
लगी एक गोली सी दुल्हा की धोली ।  
फड़कने लगे छोट, जल-सी छठी वह  
भरी त्याग की सौम्य अनमोल मोली ॥

कड़ने लगी, नीच ! मर जा इसी क्षण  
घरा के लिये भार सा तू घना है ।  
नहीं जानता आर्य-घरणी के ऊपर  
सर्वत धर्म का मेघ छाया घना है ॥

तू अथ से अरे चेत कुल के कलकी !  
मिलेगा तुझे धनु से गङ्गा पानी ।  
तिमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से  
लिखी जा रही थी समर की कहानी ॥

धनी बह रही मास भर घन्दिनी थी,  
प्रबल शत्रु के काल पर से शिविर में ।  
मुनावा उसे था पवन हा अकेला  
अमर शौर्य का गान सुने तिमिर में ॥

पुन मुष्ट कर ही गई बह शिविर से,  
बड़ा शत्रु दल कालपी की युचलन ।  
पड़ा था रहा हो घरा पर गङ्गा ज्यों  
महासर्प की छत्र गति में निगलने ॥

यही गीत गाती चली जा रही थी  
अमर मेदिनी पर है माँसी की रानी ।  
तिमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से  
लिंगी जा रही थी समर की कहानी ॥

अठारहवीं हुंकार



माँ पहन का माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है  
इन नरेशों की अभी मायामयी यह रो जवानी ।

सो गये कितने विभव हैं  
राजप्रथ की साधना में ।  
हो गये कितने निघन हैं  
मोह का आराधना में ॥

लाल कितने लाल से जो  
भाब की लाला छिपाकर,  
सो गये लघु-भूल कण में  
यरा के हापक मुक्ताकर ॥

आश्र इतने प्राण - मुमना की अतुल तुषि-अचना पर  
है निमति का गूँजता मायामया यह रो जवानी ।  
माँ पहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है  
इन नरेशों की अभी मायामयी यह रो जवानी ।

यह रहा था अम् प्रतिपल  
सगत नगरि के हमा से ।  
भर रहा था गून मर मर  
वात्रि के चपन रँगों मे ॥

मार हो जा टाग बिसने  
हव भूपर के शिगर पर ।  
आन पर दुर्य पोडा  
सूम्ता है इन अचनि पर ॥

जब हुआ बिधि वाम मुक्तसे वाजि । नाता सोढते हो,  
 कौन अथ हँसकर जगायेगा पवन में भी रवानी ?  
 माँ वहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है  
 इन नरेशों का अभी मायामयी यह री जवानी !

एक ही हुंकार पर थी  
 चल पड़ी कितनी फटारें ।  
 एक ही ललकार पर थी  
 दिव्य पड़ी कितनी दुधारें ॥

व्याम का परदान सुरसरि  
 सम घरा पर चल पडा था ।  
 वीर रस साफार होकर  
 अरि दमन हित चल पडा था ॥

हे प्रभो ! इस पुण्य तीर्थ पवित्र व्रतमय यात्रियों को  
 साधना की क्या सुनायी शान्तिमय शुचिता पहानी ?  
 माँ वहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है  
 इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जवानी

हे तुरग ! न साथ छोडो,  
 विपिन में आयी दुई हूँ ।  
 आज दुर्दिन के पगों से  
 प्रस्त तुफराई दुई हूँ ॥  
 साथ जो तुम छोड दोगे ।  
 प्राण मैं भी छोड दूंगी ।  
 वंश के गुरु-भद्र से मैं  
 आज नाता सोढ लूंगी ॥

वात्रि का सिर गोद में था, रो रही थी विफल रानी,  
साथ ही हृदय के दृगों से बह रहा था द्रव्य - पानी ।  
माँ बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है  
इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जवानी ।

विचन धन का शून्य प्रान्तर  
एक शब्द न बोलता था ।  
पवन दुःख से था विफल कुञ्ज  
लहरटाता डोलता था ॥  
दो हृदय थे परम - व्याकुल  
नापती सम्मुख निरारा ।  
वात्रि का जीवन मुखाती  
थी सतत महती पिपासा ॥

क्या प्रगट करता मला बह द्रव्य शीघ्र पर पहा हृदय  
चाहिये मुझको भवाना । अन्त में दो घूट पानी ।  
माँ बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रहा है  
इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जवानी ।

रो रही थी बैठ रानी,  
पास साथी रा रहा था ।  
स्वामि - भक्ति प्रतीक निश्चल  
भूमि रज पर सो रहा था ॥  
माए रचक मौन हो  
साकार जग से जा रहा था ।  
ध्योम में धूमिल निरारा  
अध दाना जा रहा था ॥



घाजि का मुँह चूमकर, रानी बिलख कर कह रही थी  
हे सखे ! मुझको दिखा दो कीर्ति की उज्ज्वल निशानी ।  
मौ-बदन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है  
इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जवानी ।

बल बसा घोड़ा जगत से  
रह गई रानी बिलखती ।  
बल बसी बह भक्ति जग से  
रह गई रानी कल्पती ॥  
विश्व का नाता यही है  
देख लो नरवर चराचर ।  
काल ही है मुक्ति का नव  
द्वार मत कौपो थराधर ॥

इसलिए घन से न तौलो कीर्ति का तुम भार मानव ।  
रह घरा पर अन्त में जातो यही उज्ज्वल निशानी ।  
मौ-बदन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है  
इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जवानी ।

अब मला मैं क्या कहूँ  
इतनी बहन पिधवा बनाकर ?  
क्या करूँ इतने धरों के  
बोर पुत्रों को गँयाकर ?  
क्या कहूँगी पूर्वजों से  
वंश के दीपक बुझाकर ?  
क्या कहूँगी अर्चना में  
'पुष्प से ढाली सजाकर' ?

इसलिए हे बाल साथी ! नींद से उठ बैठ जाओ,  
 मैं तनिक धो लूँ तुम्हारे पाँव को ले गङ्ग-पानी ।  
 - माँ-बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है  
 'इन नदरों की अमी मायामयी यह री जवानी !

आज मैं किससे कहूँ यह  
 टाप से भू को हिला दो !  
 आज मैं किससे कहूँ फिर  
 ध्योम को भू से मिला दो !

इस वस सी तलवार का  
 पतवार मैं किसको बनाऊँ !  
 आज किस गति-सूत्र में मैं  
 शत्रु सिर माला बनाऊँ !

हे सखे मन बाल रक्षक ! ये समस्यायें सुझाकर  
 धीरे खोलो अप भला कैसे बचेगा हिन्दुआनी !  
 माँ बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है  
 'इन नदरों की अमी मायामयी यह री जवानी !

अमुमय निर्मल कठिनतम  
 उपल के घर को दलाकर,  
 कह रहा था कण्ठ-स्वर में  
 सित विमल धारा हिलाकर ॥

'शान्त हो, जग में सदा ही  
 पय दिशावा है समय ही ।  
 गृह से भू पर गिराकर  
 फिर उठाता है समय ही ॥

इसलिए नव कल्पना की होर पर चद्योग का  
पलना धनाकर मूल जाओ हे जगद्वन्द्या मधानी ।”  
मौ-बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है  
इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जधानी ।

जग गई रानी पुन' सब  
मोह का परदा हटाकर ॥  
जग उठा नव प्रात क्षण में  
विघ्न का घूँघट उठाकर ॥  
भूमि के शुद्धि गर्भ में तब  
याज्ञि को सुख से सुलाकर,  
बाल साथी पर फरों से  
सुमन की भोली चढ़ाकर,

हो गई रानी खड़ी, तन-रोम रोम फटक उठा फिर,  
धमधमा क्षण में उठी विद्युत् सदृश थी असि पुरानी ।  
मौ-बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है  
इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जधानी ।



**उत्तीसवी हुंकार**



जग गद्द वसुधरा कँपी प्रगाढ़ कालिमा ।  
राजने लगी प्रभात की नवीन लालिमा ॥  
जग पड़े यहाँ कमल विचित्र राजने लगे ।  
मत्त मृग पुष्प-शोश शीघ्र त्यागने लगे ॥  
धारसी उतारने निफल पड़ी कुमारियाँ ।  
फूल से सजी चमक उठी नवीन - बालियाँ ॥  
बल्लरी प्रभात में प्रमत्त मूमने लगी।  
प्रात की सुहागिनी उरग घूमने लगी ॥  
सोल-रश्मि ने चला अनन्त तारकावली ।  
त्यागने लगी धनस्यली निहारकावली ॥  
गूँजने लगी निगम - मुमत्र आर्य घाम में ।  
गूँजने लगी विद्ग-गान प्राम प्राम में ॥  
भय्य कालपी नगर कुचेर के विराज सा ।  
धूम ले अनन्त को यहाँ विचित्र क्षालसा ॥  
श्रद्धियाँ मना रही युगान्त तक मित्रा रहें ।  
सिद्धियाँ षठा रहा प्रमूत सा रिखा रहें ॥  
आप भी पसंगजा कथा पुनीत पद रही ।  
दान के कराल गान में विपत्ति सह रही ॥  
एक था समय की फूल सा मित्रा प्रहारा था ।  
प्रेम का निपास भीरु धार्मिक का विद्यास था ॥

शुद्ध शान्ति भाव में स्वतंत्रता विराजती ।  
 एक ही पुकार पर सहस्र शीश भोजती ॥  
 कह रही अनन्त से निदेश मातृ भूमि का ।  
 एक हो रचो नवीन प्रेमपूर्ण भूमिका ॥

इस समय विशाल दुर्ग का हृदय विहँस पड़ा ।  
 इस समय स्वजाति का पुनीत स्वप्न हँस पड़ा ॥  
 जग पड़ी स्वधर्म की दृष्टी युगान्त घन्दना ।  
 इष्ट-मातृभूमि की जगो स्वतंत्र कल्पना ॥

शान्त नोल यर्ण पर नवीन रग चढ़ चला ।  
 धूल का पहाड़ व्योम चूम्यनार्य बढ़ चला ॥  
 कॉपने लगी मही न किन्तु भूमि डोल था ।  
 घड़घड़ा उठे दिगन्त बभ्र-सा हिडोल था ॥

बल पड़े तुरग वायु धीर कर कटार से ।  
 बल पड़े सवार मानु-ररिम की सहार से ॥  
 दिनदिना उठे तुरग मेदिनी मथल पड़ी ।  
 विध्य प्रान्त छोड़ विध्यवासिनी निकल पड़ी ॥

राजमार्ग पर अपार भीड़ भी उमड़ चली ।  
 एक साथ ही सहस्र नारियाँ निकल पड़े ॥  
 देखने स्वजाति की बनी विशाल वाहिनी ।  
 देखने जवानियाँ कटार धार सो बनी ॥

दिव्य दुर्ग सामने रुकी प्रषण्ड वाहिनी ।  
 ज्यों अयाह सिंधु में मिली सुनीर वाहिनी ॥  
 दे दिया संदेश शीघ्र इष्ट द्वारपाल ने ।  
 नम्र धीर भाव से किया प्रणाम राघ ने ॥

हो पृथ्वी राव से मिली प्रसन्न पवित्रिका ।  
 ज्यों विशाल विघ्न चीर हो रखी फरालिका ॥  
 फिर यनों सुयोजना नवीन देश व्रान्ति की ।  
 जग गई सुकल्पना महान् देश शान्ति का ॥

करफरा उठी ध्वजा स्वयधु का मिलन हुआ ।  
 धरधरा उठी प्रजा मुशक्ति का मिलन हुआ ॥  
 जग उठी प्रजा नवीन भाव मुस्करा उठे ।  
 एक साथ ही सहस्र झोठ करफरा उठे ॥

जग उठे स्वजाति के द्ये प्रती जयान भी ।  
 जग उठे स्वतंत्र आर्य धाम के निरान भी ॥  
 जग उठा पवित्र आर्य-रक्त-मुण्ड-दान भी ।  
 जग उठा पवित्र रामराज्य का विधान भी ॥

जग पड़े अगस्त्य धीर सिन्धु कापने लगा ।  
 जग उठा नगेरा शृङ्ग ज्योम नापने लगा ॥  
 जग उठ प्रताप धीर गान गूँजने लगा ।  
 जग उठे शिवा स्वधर्म मात मूमने लगा ॥

जग पड़ा स्वदेश प्रेम सरु, पवन, पहाड़ में ।  
 जग उठी नवीन शक्ति आर्य हाड़ हाड़ में ॥  
 जग पड़ा स्वतंत्र शान्द सिद्ध की दहाड़ से ।  
 जग पड़ा त्रिपुरा स्वलि मय की पुहार से ॥

सिंह-नाद कर विहंस बढ़ो स्वदेश प्रेमियों ।  
 मुण्ड-भाल हाथ ले बढ़ो स्वदेश सेवियों ।  
 मर्ये बेह के लिए छुटे न मर्य साधना ।  
 तुम बढ़ो स्वधर्म की मुमूर्-दरुह सा बना ॥



सामने पहाड़ शृंग । धूल-कण । समझ चढ़ो ।  
 सामने कटार घार फूल-सा समझ बढ़ो ॥  
 काल के कराल घत्त पर सहर्ष चढ़ चलो ।  
 अग्नि मार्ग चाँदनी बिछी विचार बढ़ चलो ॥  
 सप्त सिंधु-गर्जना सहय गान मान लो ।  
 देवलोक भूमि है, कटार-वश्र जान लो ॥  
 अण्ड यायु सम प्रसन्न शत्रु पर बढ़े चलो ।  
 रद्र से प्रयत्न लिए परार्थ पर बढ़े चलो ॥  
 रोक दे समुद्र तो अगस्त्य सा धनो, बढ़ो ।  
 ढोक दे नगोदर दो प्रचण्ड वश्र सा बढ़ो ॥  
 सामने अनोति हो कड़ी कड़ी भरोड़ दो ।  
 सामने कुरीति को टृणालि-तुल्य छोड़ दो ॥  
 सत्य मार्ग पर चलो, असत्य का विनाश हो ।  
 नम्र भाव जग पड़े स्वधम का प्रकारा हो ॥  
 शून्य अतरिष्ठ में उड़े ध्वजा स्वदेश की ।  
 सामने मुँके ध्वजा महान देश-देश की ॥  
 कर्म वीर हो प्रसन्न कर्म - क्षेत्र में बढ़ो ।  
 धर्म-वीर हो प्रसन्न धर्म क्षेत्र में बढ़ो ॥  
 त्याग हो महान यधु । साधना महान हो ।  
 शीश हो सदस्र किन्तु एक प्राण ज्ञान हो ॥  
 हाथ में कटार हो, सुतुद्धि हो, विचार हो  
 नाम हो पृथक परतु एक देश प्यार' हो ॥  
 एक ही मुजाति है यही मुलक्ष्य मान लो ।  
 इति - भीति-नाश-अथ तुम कटार - खान लो ॥

फुफ गये जवान । तो स्वदेश आज फुफ गया ।  
 रुक गये जवान । तो स्वदेश आज रुक गया ॥  
 रत्न दिये सशस्त्र तो स्वधीरमान धुल गया ।  
 देश का विजय फिरोर । शून्य भीष धुल गया ॥

इसलिये महान यज्ञ है विलास त्याग दो ।  
 नारायण है सुरग मोह पाश त्याग दो ॥  
 एक हो बढ़ो जयो । सुकीर्ति हो महान है ।  
 आज देश बंधुओं । स्वधर्म ही स्वमान है ॥

कालपी नगर के कण-कण में  
 गूँजा स्वदेश का मधुर गान ।  
 रानी के मंत्र फूटते ही  
 मुर्दा में भी धा गई जान ॥

लेकर घर में अमघम कृपाए  
 इमदमा उठे सय नौबवान ।  
 मुनघर सीरों का अटल-शापय  
 धरधरा बठा था आजमान ॥

धन्दे छननी दे जगदम्बे ।  
 तुम पर अपराध तुष्ट्य प्राय ।  
 आशाद भूमि पर हो माठा ।  
 गाढ़ंगा तरा यरोगान ॥

सामने पहाड़ शृंग धूल-फण समक बढ़ो ।  
 सामने फटार धार फूल सा समक बढ़ो ॥  
 फाल के फराल वक्त पर सहर्ष बढ़ चलो ।  
 अग्नि मार्ग चाँदनी बिछी विचार बढ़ चलो ॥

सप्त सिन्धु-गर्जना सहर्ष गान मान लो ।  
 देवलोक भूमि है, फटार वस्र जान लो ॥  
 चण्ड-बायु सम प्रसन्न शत्रु पर बढ़े चलो ।  
 रुद्र से प्रयत्न लिए परार्थ पर बढ़े चलो ॥

रोक दे समुद्र तो अगस्त्य सा धनो, बढ़ो ।  
 टोक दे नगेन्द्र दो प्रचण्ड धस्र सा बढ़ो ॥  
 सामने अनीति हो कबी रुढ़ी मरोड़ दो ।  
 सामने कुरीति को सृणालि-तुल्य छोड़ दो ॥

सत्य मार्ग पर चलो, असत्य का विनाश हो ।  
 नम्र भाव जग पड़े स्वधम का प्रकाश हो ॥  
 शून्य अतरिक्त में उड़े ध्वजा स्वदेश की ।  
 सामने मुके ध्वजा महान देश-देश की ॥

कर्म धीर हो प्रसन्न कर्म क्षेत्र में बढ़ो ।  
 धम- धीर हो प्रसन्न धर्म क्षेत्र में बढ़ो ॥  
 त्याग हो महान ध्यु । साधना महान हो ।  
 शीश हो सहस्र किन्तु एक प्राण ज्ञान हो ॥

हाथ में फटार हो, सुमुद्धि हो, विचार हो  
 नाम हो पृथक परतु एक देश प्यार हो ॥  
 एक ही मुजाति है यही सुलक्ष्य मान लो ।  
 इति - भीति-नाश अथ तुम फटार जान लो ॥

रुक गये जवान । तो स्वदेश आन रुक गया ।  
 रुक गये जवान । तो स्वदेश आज रुक गया ॥  
 रत्न दिये सशस्त्र तो स्ववीर-मान धुल गया ।  
 देश का विजय क्षीर । शून्य दीध धुल गया ॥

इसलिये महान यज्ञ है विलास त्याग दो ।  
 नारावान है सुरग मोह पाश त्याग दो ॥  
 एक हो बंदो जया । मुक्तीर्षि हा महान है ।  
 आज देश बंधुओं । स्वधर्म ही स्वमान है ॥

कालपी नगर के धर-धर में  
 गूँजा स्वदेश का मजुर गान ।  
 रानी के भद्र पूछते ही  
 मुहों में भी आ गइ ज्ञान ॥

सेहर घर में धमधम कृपाय  
 हमदमा छडे सय नौबवान ।  
 मुनघर धीरों का अटल-शून्य  
 भरपरा ठठा था आसमान ॥

दल धनी है शून्य ।  
 दुल धनी है शून्य ।  
 धन-धनी न है शून्य ।  
 धन-धनी न है शून्य ॥

इसना कहकर धीरों ने की  
जय-घोष महाकाली की जय ।  
रण में मठवाली मर्दानो  
रानी की जय, रानी की जय ॥

**बीसवीं हुंकार**



रानी का रसमय धीर भाव  
कर पान धीर मदानों ने ।  
मूर्खों पर फेरा हाथ शीघ्र  
हिन्दू-शुलरज जबानों ने ॥

अम्यर से मिले सन्देरा उन्हें  
हंस प्राण-प्रसून चढ़ाने का ।  
रण की गंगा में नहा नहा  
शोणित का अर्घ्य चढ़ाने का ॥

फिर सेतु बनाकर शत्रुओं का  
अरि को उस पार लगाने का ।  
नभ की छाती पर फर, फर फर  
यह धीर ध्यजा चढ़ाने का ॥

गुरुद्वर धीरों ने मौन - मौन  
अभिषादन किया भवानी का ।  
आगे आगे रतुनो पोड़ा  
या मर्दोसी की महारानी का ॥

गड जीव मुहारी का अरि हल  
बस शीघ्र कौंभ की धोर चला ।  
या आय-परा की छाती पर  
दानबटा का अभिमान चढ़ा ॥



अब यही छालपी का रण है  
 धीरों की शक्ति परीक्षा का ।  
 हिन्दू-कुल के अभिमान मान  
 पावन दुर्जय-समीक्षा का ॥

अब यहीं दिखानी है अपनी  
 पौरुष-रणनीति कला लड़कर ।  
 है माह - भूमि की पूजा अब  
 करनी कृपाण पर बढ़ बढ़कर ॥

इस बीच आ गई रिपु-सेना,  
 रण-आजे यजे जवानों के ।  
 घाँहे फड़की, विजली चमकी,  
 रद कड़क उठे मर्दानों के ॥

फिर दोनों दल के धीरों ने  
 ललकारा निज प्रतिपत्नी को ।  
 मिड़ गए धीर हुंकरत रव से  
 लखकर तब वहाँ विपत्नी को ॥

असि फिरी, बढ़ा सिर अम्बर में  
 गिर पा कब-ध महीतल पर ।  
 जिस भाँति महावर रव करखा  
 सो जाता है अबनी-तल पर ॥

तोपों का भीरव रव नम की  
 छाती विदीर्ण कर गरज पड़ा ॥  
 चमका, छटका फिर क्षण में ही  
 सावन के घन सम धरस पड़ा ॥

हो गया व्योम में घुर्घा घुर्घा  
तलवार चमकती थी चमचम ।  
व्यों महाप्रलय की घटा-थोच  
चपला करती हो चम, चम, चम ॥

मुन्देलखण्ड के नीलवान  
शत शत्रु-थोच हो एक लड़े ।  
व्यों नीर-बाहिनी धीर रहे  
शत शिला-खण्ड जल-थोच खड़े ॥

थी रानी का तलवार सतत  
अरि के कण्ठों को काट रही ।  
नन्दन समान इस धरती से  
थी वह अपम को छाँट रही ॥

हर में भजती जय-जय काली  
असि से अरि-दल संहार रही ।  
रिपुशायों का दापक लेकर  
नौराजन मौन छतार रही ॥

शिब-दूरी से हँस-हँस करती  
शोषित से प्यास बुझा लेना ।  
असिका जो श्रेण्य हो तनिक शोष  
रूप में ही उसे पुका लेना ॥

शिब जो थी मीठा में लटका  
दा गद पुगना माला थी ।  
इसनिप पुरोता थी रानी  
अरि सिर ही नूनन माला था ॥

इतने से था सन्तोष नर्दा  
उस समर भवानी रानी को ।  
इसलिये दूसरी अस्ति खींची  
देखा उसके नव पानी को ॥

लेकर दोनों कर में कृपाण  
वे लगी दिखाने युद्ध-कला ।  
उस रण-मतवाली के सम्मुख  
टिफ सकता था अब कौन भला ?

दाँवों से ले पकड़ी लगाम  
अम्बर में उड़ता घोड़ा था ।  
उस वायु विदारक घोड़े के  
सिर पर न तड़पता फोड़ा था ॥

वह कभी युद्ध के घीच कभी  
इस पार, कभी उस पार गया ।  
उसकी पुतली के फिरते ही  
अरि-दल पर लकवा मार गया ॥

तोपों के गोलों की भी वह  
करता था कुछ परवाह नहीं ।  
वह दौड़ रहा था क्षेत्र घीच  
मिलता समीर को राह नहीं ॥

अम्बर कहता रानी की जय  
भूतल कहता रानी की जय ।  
प्रतिपल यह रव था गूँज रहा  
रानी की जय, रानी की जय ॥

पकड़ो रानी को कहते ही  
सिर घड़ से अगल छटकता था ॥  
'घोड़ा आया' यह कहते ही  
हय सिर पर टाप पटकता था ॥

मुँह खुला अगर ललकारों में  
वो खुला सदा रह जाता था ।  
दृग निर्निमेष ही लिए शीरा  
कटकर भू पर सो जाता था ॥

कालपी नगर के नौजवान  
रिपु-दल में घुसते जाते थे ।  
शोणित से रंगे समीरण में  
वे लहंग लिए लहराते थे ॥

लेफिन अनुरासन था टीला  
सय अपने मन के थे स्वधन्य ।  
रानी का भी उनके ऊपर  
इसलिए न चलता एक मंत्र ॥

इस हेतु आ गया धीरों पर  
एण में ही दुर्दिन का घेरा ।  
अदिरूपी अन्तक का एण में  
पिर गया सामने नय घेरा ॥

रिपु-दल की लोपें गरज-गरज  
धी लगी ठलगने आग प्रबल ।  
जननी के अंपल पर सपूठ  
एण मरम लगे होने जल-जल ॥

इस बीच व्यूह को त्वरित चीर  
रानी पहुँची रणधोरों में ।  
नव मंत्र फूँकने लगी शीघ्र  
कालपी नगर के धीरों में ॥

क्या देख रहे हो हे धीरों ।  
रणभूमि नहीं सोने को है ।  
भारत जननी का पद पकड़  
अरि शोणित से धोने को है ॥

इसलिये बढ़ो, चिन्ता न करो  
रचक इन नरनर प्राणों को ।  
वैरी की छाती पर गरजो  
कुछ भीति न हो अरि-बाणों को ॥

अरि की तोपों के मुँह में ही  
विकराल बाहु दो अभी बाल ।  
अपनी सेना के सम्मुख अब  
रुक जाये आकर महाकाल ॥

दूना उरसाह बढ़ा फिर से  
जननी के वीर सपूतों में ।  
जागा बह पिछला वीर भाव  
काशी के भीषण दूतों में ॥

फिर भमक उठी क्रोधाग्नि शीघ्र  
उन क्षत्रिय वीर कुमारों में ।  
वे हूद पड़े अरि-सोपों के  
दुर्गम गोलों को मारों में ॥

मच गया प्रलय अरि के दल में  
धुन्देलों की हुकारों से।  
छूटे शोणित के कौंध्वारे  
रानी की अस्ति पे वारो से ॥

पट गई मेदिनी लारों से,  
आकाश भर गया प्राणों से।  
हो गया पवन का तन जर्जर  
गोली, गोलों से वाणों से ॥

पञ्चदल सम केंपी दिशायें भी  
रणघोरों को ललकारों से।  
तमतमा छठी रवि की किरणें  
घोरों के शर के वारों से ॥

हर गया रोज यह देख नया  
रण नाटक का पट परिवर्तन।  
या ममत्पल धड़धड़ा छठा  
देगा निच दल का अघपतन ॥

तब शोकाकुल सिर पर कर रख  
बह लगा सोपने मार्ग नया।  
छसही इस दीन-दरा पर धी  
बाई बिजया को बड़ी दया ॥

इसलिए रोज के पास पट्टूच  
बह लगी बचाने कुछ नई।  
इस घोष बहा आया रुद्धट  
नेकर बिरासत बाहिनी नई ॥

हैंत बड़ा रोज, विहँसी विजया  
बह दूट पड़ा रणधीरों पर।  
तोपें भी लगी छगलाने विप  
बुन्देलखण्ड के वीरों पर ॥

अब रही न जय की आशा थी  
जननी के वीर सपूतों की।  
मिल गई विजय फिर अनायास  
निमन अघम के दूर्तों को ॥

फिर भी रानी को आशा थी  
संभ्राम विजय कर लेने की।  
खप्परवाली के खप्पर को  
अरि शोणित से भर देने की ॥

पर वह भी क्या कर सकती थी  
घावों से तन भी था जर्जर।  
घोड़े के तन से भरता था  
शोणित का निर्भर, भर, भर, भर ॥

बच गए सँगलियों पर गिरने  
भर के ही भारत नौजवान।  
घस ओर गरजता था अरि-दल  
प्रतिपल प्रलयकर घन समान ॥

नव विजय गर्व से अरि भूखड़ा  
गढ़-मस्तक पर फरफरा उठा  
मेदिनी हिली, दिख पड़ा अचल  
बूढ़ा भारत थरथरा उठा ॥

पश्चिम से रोती पिलखाती  
सन्ध्या चल बड़ी भवन से थी ।  
उन सोते हुए सपूतों को  
ढक रही करुण अचल से थी ॥





**इक्कीसवीं हुंकार**



अभी उषा को बेणा म था।  
गुँया हुआ मोती का हार।  
लेकर रवि कर वह कूँची  
समय आँगन रही सुहार ॥

अरुण कपोलों की लाली में  
चमक रहा था चमचम द्वार।  
सत्य और शिव सुन्दर की नव  
पिहँस रही थी छवि साकार ॥

फलियाँ किसलय की थाली में  
लिए हुए पूजन-उपहार।  
देख रही थी सजल नेत्र से  
प्रभु का तम से भूमिल द्वार ॥

पवन दे रहा था जल-थल पर  
धूम-धूमकर वह सन्देश।  
पूजा की बेला है त्यागो  
नीद, सजाओ पावन-बेरा ॥

सुना रहे थे अलिगण सदका  
जगदीश्वर का गुण-गुण गान।  
दीन हो पला था हलहल पर  
सगना सौरभ का नव-ध्यान ॥

जगा ग्वालियरगढ़ निद्रा से  
जगी पताका नम में झाल ।  
रानी भी प्रभु का पूजन कर  
लेकर सखियों को उत्फाल ॥

चली देखने गढ़ को चहुँदिसि  
बिकट-पहाड़ी तममय कोट ।  
जहाँ घनाई जा सकती थी  
रण के लिये सुरक्षित छोट ।

तीन ओर से दुर्ग सुरोभित  
भरता था भूघर की गोद ।  
चौथी ओर सोनरेखा का  
नाला बहता था सविनोद ॥

उसके पार गहन जंगल था  
उसमें हंसती दिन में रात ।  
बिछे हुए थे अषनीसल पर  
शैव्या सम कुछ सूखे पात ॥

कहीं माधियों के काँटों में  
हँसते थे किसलय के गाता ।  
जहाँ पहुँचने में दरता था  
सरस सलोना स्वर्णिम प्रात ॥

बेस घनाली की स्वतंत्रता,  
धुनकर निर्मर का कल-गान ।  
योगी सा लग नया शीघ्र ही  
रानी का शरण भर को ध्यान ॥

लगी सोचने मन ही मन में  
कैसा है वन का व्यवधान ॥  
शांत रूप से जड़ जगम का  
निरक्षल है आदान प्रदान ॥

यह स्वतंत्रता 'जड़ जगम' में  
मानव में भीषण तूफान ।  
हत्या सूट स्वार्थपरता का  
गरज रहा है सिंधु महान ॥

अपनी ही जड़ के थाले में  
तड़-तड़ में ऐसा सन्तोष ।  
रवि के सद्य भरत तड़ भू पर  
मानव में है व्याप्त अतोप ॥

रवि का लीचनमय प्रकाश है  
अबनी का रसमय आहार ।  
पला रहा वन के तड़-तड़ के  
लीचन का है निष्ठ व्यापार ॥

इतने हा पर है प्रसन्न सद्य  
सधमें है अपना उत्थान ।  
सद्य में है निष्ठ स्व-व्येठना,  
अपने गौरव का सम्मान ॥

अपनी जन्मभूमि की रक्षा  
करने में है निश्चिन्त सान ।  
यहाँ न कोई शोषण ही है  
यहाँ न कोई शोषण ही ॥

अपनी शीतल छाया से हैं  
 करते माँ का शीतल गाय ।  
 और खिलाते मासृभूमि को  
 देकर तन का प्यारा पात ॥

धाम-शीत को तरुवर हँसकर  
 लेते हैं मस्त्वक पर रोक ।  
 अपने ही कोमल तन पर हैं  
 लेते वर्षा-शर भी रोक ॥

ये द्रुम-वृक्ष हैं सघे सेवक  
 करते जन-जन का उपकार ।  
 देकर अपने पुष्प-प्राण भी  
 करके माता का शृङ्गार ॥

मानव तो है परम स्वार्थी  
 मूल गया अथ माँ का ध्यान ।  
 थोड़े से धन के पीछे यह  
 सहता जग में कष्ट महान ॥

उसे तनिक भी ज्ञान नहीं यह  
 माता है रत्नों की खान ।  
 जिसकी सेवा करने में ही  
 सब कुछ पाना है आसान ॥

इसी भूमि में ही है जन्मे  
 गीतम-बाल्मीकि मतिमान ॥  
 और इसी वन-तरु के नीचे  
 प्रागा पावन - उवल - ज्ञान ॥

फिर अलिया की कल-कल ध्वनि से  
छूटा रानी का वह ध्यान।  
बढ़ी शीघ्र उस ओर जहाँ था  
शुद्ध द्रुममय दूधा-भेदान ॥

जिस पर की पिखरी मुक्त को  
रवि ने हँस कर लिया बटोर।  
या जिसके शुद्ध दूर विहँसवा  
हराभरा जंगल का छोर ॥

उसी वनस्थल के प्राण में  
बनी हुई थी सुटिया ण्क।  
जिसके चारों ओर राजता  
संस्कृति का था विमल विवेक।

सघन द्रुमों की छाया में था  
शोषसत्ता का सुन्दर घाम।  
जहाँ बैठकर मृग पहरि संग  
करत से सुग से आराम ॥

रथनसंग लठ का शारदा पर  
बैठ विद्ग य गात गान।  
बिपर रदे य सप घरा पर  
ओर नाथ कर देते तान ॥

पल से लकी हुई रागाय  
रही कुन्नी को मुकडर कम।  
सौरभ पुष्पों से लड-लडकर  
रहा घरा पर शूद्र-रिति भूम ॥



शान्त - बटज के हरित - द्वार पर  
फूलों से हँसती थी पास।  
जिस पर काली मृगछाया पर  
ध्यान भग्न थे गंगादास ॥

देख सौम्य - तेजोमय आनन  
उर में जागा ऐसा ज्ञान।  
क्या ब्रह्मर्षि वशिष्ठ स्वयं तो  
नहीं लगाए बैठे ध्यान ?

रानी प्यासी सखियों को ले  
पहुँची शान्त - कुटी के पास।  
उसी समय मृगछाया पर से  
उठे मुदित मन गंगादास ॥

उस यतीन्द्र ने मुहकट देखा  
खड़ी भवानी थी साकार।  
श्वेत वाजि था पारंग - भूमि पर,  
कटि से लटकी थी चलवार ॥

पहुँच गया ब्रह्मर्षि-धरण पर  
रानी का कर-परलक्ष काल।  
आशीर्षचन सुनाया विहँसा  
त्रय - बलियों का शीतल भाल ॥

रूप। शान्त कर तरु-छाया में  
प्रिय सखियों को लेकर साथ।  
मुदित भाव से काली रानी  
आज दुइ में ईश। सनाथ" ॥

चमक उठा तेजोमय ध्यानन  
विहँस उठा प्रथा का घाम।  
“कहो भवानो ! स्पष्ट पठाओ  
मेर योग्य यही हो काम ॥”

बोली रानी माय नयाऊर  
“प्रमुखर ! लेना है बुद्ध शान।  
तिससे मैं घर सभूँ शक्ति भर  
जनना नन्म भूमि का मान ॥

“अम्य ! मैंने वा जीवन भर  
दिया इश का ही गुण-मान।  
वा मुझे मैं दे कौन शक्ति जो  
दे सकता हूँ नूतन शान ॥

फिर भी यथाशक्ति हायगा  
इस नरवर तन से सम्मान।  
थोड़े से जीवन में जा बुद्ध  
हो जाय है यही मदान ॥

पुन' विहँसकर वाली राना  
“७ प्रमुखर दे दुख-रुलाम।  
सद्विचार, आलाक विरब के  
शानपान पैराग्य सुधान।

अब स्वराज्य कैसे  
आतनादमय भारत देरा !  
अब कैसे चमकेगा इसका  
चमकम करवा नूतन धरा !

व्यग्न भाव में बोले ऋषिवर  
 कैसे होगा इसका वेश ?  
 "इसका उत्तर दे सकते हैं  
 यस स्वदेश के धीर नरेश ॥"

"नहीं प्रभो ! यह केवल भ्रम है  
 रहा न अथ ऐसा व्यवहार ।  
 अथ स्वदेश के राजाओं में  
 रहा न वैसा शुद्ध विचार ॥

इसलिये प्रभु की सेवा में  
 दूये उपस्थित हैं ये प्राण ।  
 अथ केवल मुक्त को मिल सकता  
 इस कुटिया से ही है ज्ञान ॥"

हुह शान्त मुद्रा त्यागी की  
 गूँज उठा अणु में भरदान ।  
 "जैसे अथ तक होता आया  
 वैसे ही होगा सम्मान ॥"

याव न समझी कुछ यह रानी  
 जगी व्यग्रता की फिर रेख ।  
 सरल भाष म लगे सुनाने  
 रानी की चिंता को देख ॥

अभ्ये ! याव न समझी हो तो  
 फिर से सुन लो देकर ध्यान ।  
 स्वतंत्रता दे सकता केवल  
 त्याग, उपस्था या बलिदान ॥

जैसे गर्त भरा जाता है,  
 पूरा की जाती है नींव।  
 वैसे इस स्वातंत्र्य नींव को  
 भर सकते हैं नरवर जीव ॥

जब होवेगा इट विपद के  
 आँवों में तप तपकर प्राण।  
 तब स्वातंत्र्य भवन का होगा  
 मूल पर फिर से निर्माण ॥

समय चक्र को पुनः नचावे  
 धीरे सपूतों का नय त्याग।  
 जगे उष भवनों से लेकर  
 मीपड़ियों में नवल - विराग ॥

धण धरुँ का भाव मिटाकर  
 गायें फिर से खय का गान।  
 रन्विदुष के सत्यासन पर  
 जागे फिर दयाचि का ज्ञान ॥

सयके उर में एक कदना  
 रमती रहे सतव अथिराम।  
 एक देरा है, एक यरा है,  
 और एक है सबका धाम ॥”

रानी ने फिर कहा बिहसकर  
 “द अनन्त के सत्य विरोध।  
 अमा हृदय को विरुप पर रदा  
 यद नयान निशासा एक ॥

क्या हम सब भी देख सकेंगी  
यह स्वतंत्रता का प्रासाद !  
बव भारत का तृण-तृण-करण-करण  
विहँसेगा होकर आजाद !

दृश हिमालय के मस्तक पर  
धमकेगा जय धमधम ताज ।  
अन्तरिक्ष से अशनी तल तक  
होवेगा अपना ही राज ॥

क्या से नागा पक्षत तक  
बमा से अफगानिस्तान ।  
एक राग जब गूँज चढेगा  
मेरा प्यारा हिन्दुस्तान ॥”

“यह कैसी मृगतृष्णा रानी ।  
कैसा यह मायामय रूप ।  
कभी नहीं धगूर देखती  
पड़ी नीय में इट अनूप ॥

यद्यपि रहती टकी किन्तु है  
वही भवन का दृढ़ आधार ।  
उसके ही अनवरत त्याग का  
रूप भवन होता साकार ॥

इसी भाँति है सधमगले ।  
कही नहीं जा सफती धात ।  
दिखलाइ देगा क्या इस क्षण  
यह स्वास्त्य भयन साक्षात् ।

किन्तु भवन की नींव पड़ गई  
मातु । इसी से हो सन्तोष ।  
आने वाले पूरा करके  
आवेगे इससे परिवोप ॥

हे स्वतंत्रता के मिलने में  
अमर निरानी । अमी विलम्ब ।  
अमी सपूतों के पीरुप का  
लेना है माँ को अवलम्ब ॥”

. इतनी कह भविष्य की बातें  
हुए जितेन्द्रिय हर्षित मीन ।  
सान्ध्य गीत या सुना-सुनाकर  
स्वग-कुल हुआ बिटप पर मीन ॥

बली भवानी शीरा नवाकर  
पंखल घोड़े पर सविचार ।  
लौट पड़ी सखियों के सँग में  
सुण में नाले को कर पार ॥





**बाइसवी हुकार**





चल पड़ा सूर्य उपा-गृह स  
रक्तिम-आनन धमधमा रहा।  
कर से मूतल के कणकण को  
बह द्रुतगति से था जगा रहा ॥

था फैल गया नव ताप त्वरित  
वन, उपवन, नदी, फझारों में।  
ध्याया निदाप का असह दाय  
जल, थल, वृण अगम पहाड़ों में ॥

चल उठा क्रोध की ज्वाला से  
सागर, सरिता, सरबक्षस्यल।  
रण करने को धरधरा उठा  
तद-तद का नव-रक्तिम-दल-दल ॥

क्रोधाग्नि धधकने लगी शीघ्र  
मातृ की गति में दहर-दहर।  
चल पड़ा धूमने ध्याम धूल  
अय-भ्यजा उड़ाता च्छर-च्छर ॥

चल पड़ी देरा मुन्देन का  
सफनाए नव शृङ्गार किर।  
सोने की धात्री में पति की  
पूजा का नव-धरहार किर ॥

पति का रण-साज सजाकर वे  
चमचम करती सलवारों से ।  
मस्तक पर शुचि-पद धूल लगा  
कहती थी वीर कुमारों से ॥

“हे नाथ ! कभी न मुझे यह सिर  
अरि-दल के छीले धारों में ।  
हे प्राण ! कभी न रुकें ये पद  
विघ्नों के ६६ छंगारों में ॥

रक्षकर मुएदों का नष पहाड़  
चढ़ उसकी वनत बोटी पर ।  
लिख देना मेरे हे सुहाग !  
धीएव-मान अरि बोटी पर ॥

शोणित के सागर पर तरणी  
तिर चले वीर सम्मानों की ।  
गूँजे कण-कण में एक बार  
फिर से गाया धलिदानों की ॥

जीते जी कर रण सन्धि पार  
छावी उत्तान करके आना ।  
मेरे सुहाग की सालो से  
हे नाथ ! पुन आ सह्राना ॥”

कहती थी यदों “हे भावा !  
भाइ का मान पदा देना ।  
अरि सिर का रक्षकर मुएद माल  
राष्ट्र को मुदित चढ़ देना ॥

एप्परवाली के एप्पर में  
जीभर रिपुशोणित भर देना ।  
निज चन्द्रहास की लपटों से  
माता का सफट हर लेना ॥

।  
धमधम हिमनग के मस्तक पर  
जय-मुकुट प्रसन्न चढ़ा देना ।  
यदि सम्मुख काल सदा हो तो  
धावी में फुन्त चढ़ा देना ॥

कहना उससे है भेंट यही  
भारत के नव रणधीरों का ।  
कह देना उससे टफ यही  
है भरतखण्ड के वीरों का ॥”

माता कहती है वीर पुत्र ।  
तुम दूष कलकित मत करना ।  
हँस-हँसकर तत्र अँगारों को  
तुम फूल समझकर पग धरना ॥

दुर्धर अजस्र की लपटों को  
पुष्पों की सुरभि समझ चढ़ना ।  
रिपुदल के राज-द्रुहारों को  
सुमनों का मार समझ चढ़ना ॥

सागर गो-पद सम छोटा है  
यह समझे मर बोर-झाल ।  
पसा चकड़ा देना जिससे  
करिबन में छडन लग साज ॥

परवशता का हो जाय अन्त  
निर्ममता भी थरथरा उठे ।  
निज जाति-धर्म का विजय-केतु  
नभ मस्तक पर करफरा उठे ॥

यश जलद गगन में छा जावे,  
कड़कड़ा उठें युग का कड़ियाँ ।  
जननी की आँखों से पोंछो  
तुम आँसू की अविरल लड़ियाँ ॥

पर ध्यान रहे हे कुल क्षीपक ।  
मानस के मेरे अचल प्राण ।  
तुमको करना है पुरखों को  
गौरवमय - पावन अर्घ्यदान ॥

हम वीर देश की माताएँ  
हम वीर वेश की रानी हैं ॥  
मेरा कहता है रोम-रोम  
सप्राणी हैं, सप्राणी हैं ॥

जिसने अकबर की छाती पर  
चढ़कर कटार थी चमकाइ ।  
रण का डका था बजा-बजा  
अरि-कण्ठों पर अति दमकाइ ॥

मेरा यह है घु-देलखण्ड  
मैं इसको रक्षा कर लूँगी ।  
यदि समय कहेगा तो माँ की  
मुण्डों से मोली भर दूँगी ॥

दे-देकर बिदा जवानों को  
घोड़ा में ढाली मालाएँ ।  
चल पड़ी धाम को मुदित पदन  
माताएँ यहाँ, मालाएँ ॥

जय चहुँ दिशों से आ आकर फ  
जुग गए घोर रण सेनाना ।  
सयके फर में लहराते थे  
शार्तन्य केतु जय-अभिमाना ॥

रानी पंठा अमराइ में  
हंस फहली थी सरदारों से ।  
था ताप ल रहा रवि फिरणें  
तीर भालों के धारों से ॥

पुप पत्ता-पत्ता मुनगा था  
वह रण सन्देश भवानी का ।  
केवल अम्यर दुहराता था  
जयपोष नए सेनानी का ॥

हे माता फ सच्चे सपूत  
घोरों फ पथ के अनुगामी ।  
सयके उर म हे यसा दुःखा  
गोतावाला अतपामा ॥

एसने हा इसे पताया हे  
घोरों का गति हे धारों पर ।  
यदि नम भी आ दूट तुम पर  
तो रोको इसे बटारों पर ॥

बह हो है सबको डुला रक्षा  
है कुन्तों में उसकी ब्याला ।  
इसलिए धर्म के धागे में  
रचनी है फर्मों की माला ॥

यह है अन्तिम संग्राम आज  
कुछ नयी बात बतलानी है ।  
फिर दूने पल से आगे बढ़  
रणभेरी आज बजानी है ॥

हे वीर कुँवर रघुनाथ सिंह !  
सुत को निज हृय पर बैठाओ ।  
इसके भविष्य के जीवन को  
शत शत बत्सर तक फैलाओ ॥

यदि अयलक्ष्मी ही रूठ जायें  
तो सुत का प्राण बचा लेना ।  
अरि से छिप दक्षिण भारत में  
रक्षित इसको पहुँचा देना ॥

यह कह कर राजमहानी ने  
जननी का जय जयकार किया ।  
मृग-मृग कण-कण के मानस में ।  
वीरत्व भाव संचार किया ॥

घन उठा शाघ्र रण-बाघ वहाँ  
घन घन अम्यर घनघना उठा ॥  
हथियारा की मन्कारों से  
पत्थर-पत्थर मन्मना उठा ॥

उस भीमनाद से क्षण में ही  
समाम भूमि धरधरा बठी।  
नम के मस्तक पर हहराती  
वीरत्व-ध्वजा फरफरा उठी ॥

कम्पित हो गूँजी धमराइ,  
रवि का ध्यान दमदमा उठा।  
हाथों में धीर सपूतों के  
सब लौहशस्त्र धमधमा उठा ॥

माँ की गोदी में उछल पड़े  
सुव छोटी सी तलवार लिये।  
उठ बैठे रुग्ण अराक्त शीघ्र  
दुख की छाया का त्याग किए ॥

हाथों में भरपा लिये विभ्र,  
इल यामे छरक सुबाधों से,  
ठिठके क्षण में पक्षी पय पर  
आहत हो ध्वनि के पावों से ॥

ठक गया पवन ध्वनि का पय दे,  
सब दिग्दिग्गुत् भी काँप उठे।  
रवि-किरणों की शुभ रग्जु बड़ा  
सारा भूतल से नाप उठे ॥

इस बीच अलबल से मुन्दर  
झायी नूतन बधल-पोदा।  
जो रूप, रग या फुत्रों में  
परसे पोदे का था जोदा ॥



फिर भी तोपों का चलता था  
हुझार घरा की छाती पर।  
सम तोम घुएँ का छाया था  
दिनकर की जलती छाती पर ॥

फर रही दिशाएँ थी घड़ घड़,  
लड़ लड़ पत्थर थे टूट रहे।  
सावन के घन के शरसम थे  
तोपों से गोले छूट रहे ॥

भीषण गोलों को रचक भी  
चिन्ता न भवानी करती थी।  
शिष दूती का रोता खप्पर  
हर-हर गति से बह भरती थी ॥

नय हुझर सवारों का हमला  
था कड़ावीन घन्दूकों से।  
जिसको मूर्तों के घोरों ने  
रोका फटार की नोंको से ॥

रानी घोड़े को एड़ लगा  
समरांगण को थरती थी।  
चढ़ने को स्वग सपूतों को  
अरि सिर सोपान घनाती थी ॥

तलवार किधर क्य उठती थी  
क्य किधर छपाझप फरती थी।  
यह भी अरि-दल को शान न था  
क्य किधर लपालप करती थी ॥

केवल इतना कह पाते थे  
रानी आई, रानी आई।  
सपतक सिर घड़ से अलग लोट  
भू पर फड़ता रानी आई ॥

सय तक घोड़े की टापीं की  
ध्वनि ही अरि दल मुन पावा था।  
सपतक रानी का खड्ग तुरत  
धन मृत्यु शीश पर आता था ॥

दाएँ-बाएँ दा हाया से  
रानी थी रिपु सिर काट रही।  
स्वातन्त्र्य भवन की नई नींव  
या शत्रु मुण्ड से पाट रही ॥

मर गए लाल कुर्तबाज  
सय शूर शत्रु क बारा स।  
अरि का सिर भी फिर लुटक पड़ा  
रानी की दो बलवारों से ॥

दिनभर का भान्त समोरण भी  
पावों से या लदलड़ा रहा।  
शाहित क निगर म दृष्टका  
मानस भा या परधरा रहा ॥

रह गए चार दा धर वहाँ  
ममाम भूमि म सेनानो।  
जिनरो लंकर थी कँपा रहा  
अरि का हर मर्तो ही राना ॥

उस ओर शत्रु दल में पद्रह  
थे कडाघोन तलवार लिए ।  
आगे थे कुछ गोरे सैनिक  
संगीनदार तरधार लिए ॥

रानी ने पीछे मुड़ देखा  
रघुनाथसिंह थे गरज रहे ।  
रिपु-दल का अवयव छाँट-छाँट  
आगे बढ़ने से षरज रहे ॥

फिर रानी दूने साहस से  
दोनों फर की तलवारों से,  
पथ लगी धनाने रिपु-दल में  
पवि सम निज तीखे धारों से ॥

सगीनदार सगीन लिए  
भूतल पर सोते जाते थे ।  
निज शोणित से रजित होकर  
टेसू के सम लहराते थे ॥

इस धीब लगी संगीन-हूल  
रानी को छाती के नीचे  
फिर भी रानी ने सुला दिया  
उस अरि को पैरों के नीचे ॥

बढ़ रहा रक्त था तर, तर, तर  
ड्रेस पर छा गई निराशा थी ।  
पर अति न घाहर आई थी  
ए ही जय की आशा थी ॥

रानी ने सोचा मैं भी अथ  
स्वातंत्र्य नींव की ईंट बनो।  
छा गई सजल-दग के सम्मुख  
वेदना निराशा बनी बनी ॥

छुएँ मैं फिर रानी गरन छठी  
बलवार चमाचम चमकाती।  
श्वेताग दनादन छाँट छाँट  
शोणित से रजित लहराती ॥

घोड़ा भो दूने साहस से  
उड़ गया गगन की छाती पर।  
टापों से पाय लग करने  
रिपु-दल के जय की छाती पर ॥

रानी थी आगे निकल गई  
साथी सप थे दारें दारें।  
अपलक्ष्मी भी मुसकाती थी  
उन बीरों के दारें दारें ॥

पीछे पीछे दस पुइसवार  
गोर बढ़ते दो आत ध  
अपनी पैना बलवार - साथ  
बन्दूकें सतत बलाते थे ॥

इसन मैं गोली लगी एक  
बढ़ता मुन्दर की छाती म।  
मानों बढ़ तीर लगा मों का  
दुग की सपिा सी थाता मैं ॥

१७  
उस धोर शत्रु दल में पन्द्रह  
थे कडाबोन तलवार लिए ।  
आगे थे कुछ गोरे सैनिक  
सगीनदार दरधार लिए ॥

रानी ने पीछे मुड़ देखा  
रघुनाथसिंह थे गरज रहे ।  
रिपु-दल का अययव छाँट-छाँट  
आगे बढ़ने से बरज रहे ॥

फिर रानी दूने साहस से  
दोनों कर की तलवारों से,  
पथ लगी धनाने रिपु-दल में  
पवि सम निज सीखे वारों से ॥

सगीनदार सगीन लिए  
भूतल पर सोते जाते थे ।  
निज शक्ति से रजित होकर  
टेसू के सम लहराते थे ॥

इस धीप लगी संगीन-हूल  
रानी की छाती के नीचे  
फिर भी रानी ने मुला दिया  
उस शरि को पैरों के नीचे ॥

बढ़ रहा रक्त था तर, तर, तर  
उस पर छा गई निराशा थी ।  
पर आँठि न बाहर बाह थी  
ए ही जय की आशा थी ॥

रानी ने सोधा में भी ध्य  
स्वातंत्र्य नीच की ईंट धनी ।  
छा गई सजल-टग के सम्मुख  
वेदना निराशा धनी धनी ॥

छण में फिर राना गरज उठी  
तलवार चमाचम चमकाती ।  
श्वेतांग दनादन छाँट छाँट  
शोणित से रजित लहराती ॥

घोड़ा भो दूने साहस से  
उड़ गया गगन की छाती पर ।  
टापों से पाय लग करने  
रिपु - दल के जय की छाती पर ॥

रानी थी आगे निकल गई  
साथी सप थे दाएँ बाएँ ।  
धयलदमी भी मुसकाती था  
उन बीरों के दाएँ दाएँ ॥

पीछे - पीछे दस पुइसबार  
गोरे पड़ते हो आत धे  
अपना पैना तलवार - साथ  
बन्दूकें सतत चलाते धे ॥

इतने में गोली लगी एह  
पड़ता मुन्दर की छाती म ।  
मानों पद तीर लगा मों की  
पुग की सपित सी छाती में ॥

सो गई शीघ्र वह पह पहती  
रानी की जय, रानी की जय ।  
नव स्वतंत्रता की तपस्विनी  
रानी की जय, रानी की जय ॥

रघुनाथ सिंह ने उसे उठा  
कस लिया पीठ पर कपड़े से ।  
हन्ता को क्षण में सुला दिया  
रानी ने असि के थपड़े से ॥

क्षण में घोड़े की बाग मुड़ी  
पड़ गया पवन से था पाला ।  
था वहाँ सोनरेखा का ही  
वन गया दुःखमय वह नाला ॥

पीछा करनेवाले गोरे  
अब पाँच बचे दिखलाते थे ।  
शोणित से रजित द्रुतगति में  
पिस्तौल चलाते आते थे ॥

रानी का वह अड़ियल घोड़ा  
दो पैरों पर हो गया खड़ा ।  
कसते कसते भी उसने या  
दोनों पग भू पर दिया गड़ा ॥

गोरे इतने में पहुँच गए  
रानी उलझन में पड़ी रही ।  
घाँ कर की उलझार फेंक  
कर से अयाल घर अड़ी रही ॥

इतने म गोली लगी एक  
मार्यो जघा धरयरा उठा।  
शोणित का फरारा राना के  
लघे से फरफरा उठा ॥

दुद्धर्ष अनल सम प्रोधानल  
राना के मुग्य पर दमक उठा।  
सैरी सिर मू पर लुडका फर  
दाएँ फर सायक चमक उठा ॥

घारों गोरों से घिरफर भी  
एकाको रानी लटती थी।  
उर से, लघ से शोणित को  
कल कल परनाली बहती थी ॥

इसकी इसको चिन्ता क्या थी  
सिर पर फेसरिया घाना था।  
स्वातंत्र्य मवन के दीपक को  
मगट में सत्त् जलाना था ॥

मैफार पड़ी जग की नीका  
कर-वन से चमा बदाना था।  
स्वातंत्र्य सिन्धु के शुभ लट को  
आगे बढ़ उसे दिगाना था ॥

पावन सन्देरा पराठल पर  
संघट में चमा मुनाना था।  
निद्र कर का देकर नब प्रचारा  
नरोन्व-बुमुन बिचसाना था ॥



अरि-दल की हृदय शिला पर भी  
असि से गाथा लिख देनी थी ।  
इस महायज्ञ की सुरभि अभी  
जन जन-ठर में भर देनी थी ॥

घोड़ा अड़ियल था अडा रहा  
रानी इससे कुछ घड न सकी ।  
दुस्तर की छाती पर प्रस्तर  
दहला कर भी वह घड न सकी ॥

सप्त नियति नटी के नाटक से  
कोई भी जग में बच न सका ।  
सर की स्वर्णिम आकांक्षाएँ  
रजित दिन पट पर रच न सका ॥

छिपकर पीछे से चैरी ने  
रानी पर असि का वार किया ।  
सिर का धार्या सट सिर से चट  
शोणित से रजित फाट दिया ॥

ससके मूठके के साथ साथ  
रानी का धार्या नेत्र गिरा ।  
अथ सवर हमारी सेना की  
आशा पर पाना आज फिरा ॥

इस पर भी समर भवानी ने  
गोरा घड मू पर लिटा दिया ।  
किसने छोड़ित रवेतांगों को  
फर डेर घरा पर थिछा दिया ॥

विकराल कालिका सी रानी  
कपट पोड़े में उतर पड़ी ।  
असि का कौराल दिग्बलाने को  
भूतल पर आकर हुई गड़ी ॥

बह दूट पड़ी फिर गोरों पर  
उन शोणित से हो गया लाल ।  
या रोम-रोम से चण्डा के  
बह घबक रहा था मोघ-बवाल ॥

अब दो गोर रह गए रोप  
दुष्ट रानी फिर जूक पड़ी ।  
या सुधित सिंहिना हा अपने  
शिशु-हन्तक पर हा दूट पड़ी ॥

क्षपलप करती अस्ति - नागिन न  
गोरे मुखों को घाट लिया ।  
उन दोनों श्वेत कर्णों से  
पप-गर्त स्वत्व का पाट दिया ॥

उन दोनों श्वेत कर्णों पर  
राना पद रगहर लड़ा इह ।  
या शुम्भ निशुम्भों के उन पर  
दुगा हा उनकट गड़ी इह ॥

स्वान्त्य भवन की दबा का  
रानी न मुकहर नमन दिया ।  
गुण भोषणकर कर्मों का  
मानस में फिर से मनन दिया ॥

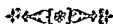
गिर पड़ी हाथ से धाल - सखी  
जो अब तक सँग में खेली थी ।  
जिसने रानी की सब विपदा  
अपने ही ऊपर मेली थी ॥

रानो माता की जय कहती  
धसुघा पर थो लडखडा चली ।  
रवि की किरणें हो प्रभाहीन  
चित्तिजांचल पर हडबडा चली ॥

रघुनाथसिंह ने आगे बढ़  
गिरने से उसकी घचा लिया ।  
मूर्छित रानी को धीरे से  
अपने घोड़े पर बिठा दिया ॥

सुख सिसक-सिसक कर रोता था  
मुख स्नेह-नीर से घोता था ।  
माता के अतुलित मानस म  
अनुभाव-धोज वह बाता था ॥

उस छुटिया पर जो भीहत हो  
तम-पट में छिपती जाती थी  
चल पड़े सभी रानी को ले  
आँसू बरसाती थीं ॥



## महाप्रस्थान

निष्प्रम शोणित से रजित मुन्त्र पढ़ा हुआ था लाल ।  
 फूट फूटकर विज्ञप्त रहा था पारलभूमि पर लाल ॥  
 आगे आगे बन्गा पकड़े पोड़े का रघुनाथ ।  
 चतुर्भुज जा रहे थे द्रुतगति में घोर व्यथा क साथ ॥

शोकाकुल दगमग पग रथता चलता मन्द समीर ।  
 रथ भी तम किमलय अघरों पर हान लगा अधीर ॥  
 मूर्च्छित मन रानी का हय, पर सिर पर अमि का वार ।  
 जिसके ऊपर विहस रहा था दुर्दिन का गुरु भार ॥

रथम बहादा रघु शोणित लादित अस्ताचल दुग्ग दग्ग ।  
 विचने लगा मानु के मुन्त्र पर चित्ता का नय रथ ॥  
 कहने लगा बौर सेनानो लग रवि का प्रथम ।  
 इधर भवानी के पीडा से मूय रहे थ प्राण ॥

"जात है दिनमणि ! अम्बर का धार-धार छोड़ ।  
 हंसत हुए कमल-वन से क्यों पसा नाता सोड़ ?  
 उदय हुए थ मन में लहर चित्तना बहा पदाह ।  
 और जा रह है अय जग का पररुध पूर्मिल राह ॥

अबन अम्बर-बाध विरह के मुम हो है आपार ।  
 सोषो तनिक धरा पर जग का चलता जा व्यापार ॥  
 प्राण-दान जगाया जग का गव था क्या उन्नास ।  
 बीर-देरा क मानस में था हंसता विजय-प्रकाश ॥



इन सप को जी भर दिखलाकर रानो है अथ मौन ।  
ऐसा मत्र पूँकनेवाजी है वसुग कौन ।  
अथ न समय है अधिक देर तक करने का सुविचार ।  
नरवरता के लिये व्यथ है करना हाहाकार ॥”

इतना कहकर गगाजल ले बापा गगादास ।  
पट्टेच गए रानो के मूर्ध्नि मुग्य मण्डल के पास ॥  
मुक्कर देखा अभी मन्द गति में चलती है श्वास ।  
विकल कर रही थी रानो को गगाजल की प्यास ॥

फान रुके थे सुनने को गीता का बिर उपदेश ।  
प्राण रुक थ कहन का पत्र अन्तिम सदेश ॥  
मुले नेत्र दत्ता सम्मुख बापा का पावन वेश  
‘नैन दक्षि पायक’ का गूजा मधुमय उरदेश ॥

आगे रानो मीठ हो गई कह न सकी कुछ बात ।  
अपर हिल रहे थ केवल, या उर न ममापाठ ॥  
साध रही या मन हा मन में फरके अलिष पन्द ।  
जीवन-दायक का प्रकाश या दावा जाता मन्द ॥

“अमर शीय का अमर में फहरगा अमर - निरान ।  
क्या स्वातन्त्र्य भवन का फिर मे हागा प्रभु । उत्पान ।”  
पग पग धरता पर फिर जन शिव हागा मुल्ल पहाड ।  
मूर शत्रु - हर कप उठगा मुनहर मिह - दहाड ।

जाग उठेगा जन जन मन में गता विमन विवेक ।  
जाग उठेगा उर उर म हा सब मानव है एक ।  
मूर्त उठेगा कज कज में है शिव पूष दहाड ।  
पमहागहन न भवा क अगन में हर बग ।

पहुँच गए रघुनाथसिंह ले रानी को तत्काल ।  
जिसका सारा तन मानस थे शोणित से था लाल ॥  
लोहित वर्ण में अम्बर पर अक्षित था गुण-गान ।  
धीरे धीरे शून्य हो चले जग के विविध विधान ॥

लौट रहे थे स्वर्ग नीहों को भर लयवती उद्गान ।  
तरु तरु का कम्पित दल दल था सम में होता म्लान ॥  
घासों के फुरमुट का मरमर रव होता था शांत ।  
उन्नत-तरु-शिखरों पर रवि की किरणें था कुल्ल क्लान्त ॥

ज्ञान-धाम में अभी गूँजता था संध्या का गान ।  
मृगझाला पर लगा हुआ था अभी यती का ध्यान ॥  
धीरे कुँवर रघुनाथसिंह ने कर से शोध सँभाल ।  
सुला दिया अवनो-अवल पर रानी को तत्काल ॥

ध्यान मग्न हो गया यती का देखा दृश्य विपन्न ।  
रानी रेशम के अञ्जल पर थी अथ मरणासन्न ॥  
घोला है भारत के गौरव ! क्यों बैठे हो मौन !  
अयनो-तल पर इस सुकीर्ति का भागो है अथ कँन !

देख रहे हो क्या संसृति की मृगतृष्णा है धीर ।  
रानी सयको घटा रही है जोषन का पथ धीर ।  
यह भारत की ललनाओं का है पावन-आदर्श ।  
इसके ही अनुकरण मात्र से होवेगा उत्कृष्ट ॥

अमर-काति के लिए विहँसकर हो अतक सम्मान ।  
तलवारों को धारों पर भी हो छाती उत्तान ॥  
गूँने फिर घाटो-घोटा में जय-स्वदेश का गान ।  
नभ में फहरे उर-शोणित से रजित अमण निशान ॥

इन सप को जो भर दिललाकर रानी है अथ मौन ।  
 ऐसा मय फूँकनेवासा है वसुग फौन ।  
 अथ न समय है अधिक दर तक करने का सुविचार ।  
 नखरता ये लिये व्यथ है करना हाहाकार ॥”

इतना कहकर गगावल ले बाधा गगादास ।  
 पहुँच गण रानी के मूर्धन मुख मण्डल के पास ॥  
 मुकुर देखा अभा मन्द गति में चलता है श्वास ।  
 बिकल पर रहा थी रानी को गगावल को प्यास ॥

कान रुके थे सुनने को गीता का बिर उपदेश ।  
 प्राण रुक थे कहन को कवज अन्तिम स-देश ॥  
 सुने नेत्र देखा सम्मुख बाधा का पावन वेरा  
 'नेत्र दक्षित पावक' का गूजा मधुमय उर-देश ॥

आगे रानी मौन हा गई कह न सकी कुछ बात ।  
 अपर हिल रहे थे फेवल, था उर न ममापात ॥  
 साध रही था मन हा मन में करके आँसु पन्द ।  
 जावन-दापक का प्रहारा था होता जाता मन्द ॥

“अमर शीय का अम्यर में कहरगा अम्य - निरान ।  
 क्या स्वात्म्य भयन का फिर मे होगा प्रभु ! प्यान !”  
 पग पग परता सर फिर उन - दिव हागा मुकुर पहा ।  
 मूर - शयु - सर क व उडगा मुनहर मिद - दहा ।

आग उडगा उन उन मन में गता विमन विबर ।  
 जाग उडगा गर गर में इन सब मानव दे एह ।  
 गूज उडगा कज कज में है मिद पूष पर दहा ।  
 समटा राग र भयन क अगन में सर - वेरा ।



हाला यति ने रानी के मुख में रंगा का नीर ।  
 जिसके लिये विश्व में केवल अथ थे प्राण अघोर ॥  
 जघन प्रतीची के आंचल पर रवि-मुख हुआ मलीन ।  
 जीवन - दीप जघन रानी का हुआ अथ - तम लीन ॥

देख कुटी को कहा यती ने 'सुनो देश-सम्मान ।  
 लेकर इसका सारी लफड़ी अतिम करो विधान ॥  
 श्रव न रही इसकी सार्थकता, नहीं जगत में स्थान ।  
 यहा हमारा है रानी की पूजा का सामान ॥”

क्षण में रानी विह्वल बठी पा पावक की मधु गोद ।  
 अमर लोक स-देश सुनाने चला धूम्र सविनोद ॥  
 चला सुनाने कण-कण को फिर वायु अमर - उपदेश ।  
 तन, मन, धन सर्वस्य चढ़ाकर, साजो उज्ज्वल देश ॥

